अम्बरपुर के अमर वीर

(१८५७ सम्बन्धी कहानियाँ)

श्री वृन्दावनलाल वर्मा

मयूर प्रकाशन, झांसी ।

परिचय

संग्रह की सारी कहानियां इतिहास के तथ्यों पर आधारित हैं। कुछ के नीचे आधार उद्धृत कर दिये गये हैं। जिनके रह गये उनके यहां दिये जाते हैं। 'अम्बरपुर के अमर वीर' बिलकुल सच्ची घटना है। इसका आधार है Malleson's Indian Mutiny Vol. IV P. 227 संसार भर के इतिहास में ऐसी बहुत ही थोड़ी घटनायें निकलेंगीं। अवध के उन चौंतीस किसानों ने अँग्रेजों की बीस हज़ार सुसज्जित सेना से टक्टर ली थी! इनका स्मारक? दिखलाई न पड़ने वाले हमारे हृदय के रक्त की एक एक बूंद में है और रहेगा। इसी कारण इस कहानी संग्रह का नाम उनके नाम पर है।

हमारे कुछ इतिहास लेखकों का मत है कि सन् १८५७ का संघर्ष महज सिपाही विद्रोह था। मेरा स्पष्ट मत है कि यह 'महज सिपाही विद्रोह' नहीं था, बल्कि क्रान्ति थी। अपने मत के समर्थन में मैंने 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' के १५ अगस्त सन् १९५७ वाले अंक में सप्रमाण कुछ लिखा है। अवध, बुन्देलखण्ड और मध्य प्रदेश के कई भागों के सम्बन्ध में उस समय के कई अँग्रेज़ लेखकों का मत है कि वह कोरा सिपाही विद्रोह न था, क्रान्ति थी। अम्बरपुर के अमर वीर हमारे इस मत को जगमगाते हैं।

'वैल्लूर का विद्रोह' प्रसिद्ध घटना है। सन् १८५७ की क्रान्ति के बीज उसमें मौजूद थे। Thomson इत्यादि इतिहास लेखकों ने उसका विवरण दिया है।

'वे दिन लद गये मैम सा'ब' का आधार Cawnpore Narrative P. 23 & P. 93 है। 'घायल सिपाही' का पौत्र उबौरा ग्राम जिला टीकमगढ़ में है। उसी के मुँह से मैंने घटना सुनी थी।

'गुप्त सभा' कहानी मैंने 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में छपवाई थी। इसका आधार Kaye's History of Indian Sepoy War Vol. III P. 85-87 है। 'सिपाही विद्रोह' बहुत पीछे हुआ। क्रान्ति के लिये गुप्त सभा पहले स्थापति हो गई थी। कमल हमारी उस क्रान्ति का प्रतीक था। आधार Narrative of the Mutiny P. 4 and our Indian Empire.

'दिल्ली के पतन का एक कारण यह भी हुआ' का आधार Vol. III Kaye की वही पुस्तक और उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित 'स्वतन्त्र-दिल्ली', पृ० १५३, इत्यादि हैं। 'देशद्रोही का मुँह काला' का आधार Kaye's की उसी पुस्तक के तीसरे भाग का पृ० ६३५ से आगे तक। इन कहानियों से हमारे उस पराक्रम की विफलता के कारणों पर कुछ प्रकाश पड़ता है।

'नाना साहब और कानपूर की वह दुर्घटना', मेरे तत्कालीन पुस्तकों के अध्ययन के निष्कर्ष पर आधारित है। इनमें मुख्य Kaye की वह पुस्तक और टेलर की पुस्तक Cawnpore Narrative है। उस युग की और भी कई कहानियाँ हैं जो फिर प्रकाशित होंगी।

झाँसी,
२४-६-५७

वृन्दावनलाल वर्मा

अम्बरपुर के अमर वीर

२५–२–५७ को पूरे सौ बरस के ऊपर हो चुके हैं। लखनऊ में अंग्रेज पार नहीं पा रहे थे। एक मोर्चा जीता तो दूसरा खो दिया। रेजीडेन्सी को घेरे से छुटकारा देने के लिये जो सेना कानपुर से आई वह लड़ते-लड़ते खुद घिर गई। दिल्ली का पतन हो चुका था, परन्तु लखनऊ का युद्ध-हठ अंग्रेजों के कलेजे का कांटा बन रहा था।

तीन दिशाओं से अंग्रेजों के सहायकों की सेनायें लखनऊ को भून डालने के लिये चलीं। अंग्रेजों की एक सेना का नायक जनरल फ्रैन्क्स था, दूसरी का जनरल रोक्राफ्ट और तीसरी उनके सहायक तत्कालीन नेपाल नरेश राणा जंग बहादुर के नौ हजार गोरखों की थी। नेपाल की उस समय अंग्रेजों के साथ परस्पर सहायता और मैत्री की सन्धि थी। नेपाल नरेश को अंग्रेजों की सहायता करनी पड़ी।

घाघरा के उत्तर से नेपाली सेना, पूर्व में दो भिन्न-भिन्न स्थानों से जनरल फ्रैन्क्स और जनरल रोक्राफ्ट की अंग्रेजी सेनायें काशी से दूर उत्तर में आ मिलीं। इन्हें लखनऊ पर धावा बोलना था।

इन सेनाओं ने अपनी सुविधा के लिये जो मार्ग सहज ही लखनऊ पर आक्रमण करने के लिये तय किया वह घाघरा और गङ्गा के बीच का था। नेपाली सेना घाघरा के दक्षिण में आ चुकी थी। सब मिला कर सैन्य-शक्ति बीस हजार की हो गई होगी। तोपें, गोला-बारूद, रसद सामान इत्यादि इनके पास काफी था। इन्हें विश्वास था कि लखनऊ पहुँचे नहीं कि क्रान्तिकारियों का अड्डा साफ किया।

एक जसूस ने जनरल फ्रैन्क्स को खबर दी, 'अम्बरपुर के किले में जो रास्ते में पड़ता है कुछ लोग मुकाबले की तैयारी कर रहे हैं।'

'कितने होंगे ?'

'सौ से ज्यादा नहीं हो सकते। सिपाही नहीं हैं, किसान हैं।'

'किसान ! यह हिम्मत !! सामान क्या है उनके पास ?'

'एक तोप और कड़ाबीन बन्दूकें।'

अंग्रेजी सेना इस क़िले की उपेक्षा करके किनारा काटकर लखनऊ की ओर जा सकती थी, पर वह क्रान्ति की एक भी चिनगारी को यों ही छोड़ नहीं जाना चाहती थी। ये थोड़े से लोग पीछे न मालूम कितनों में आग फैला दें, क्योंकि अंग्रेज एक जगह युद्ध की आग बुझा देते थे तो दूसरी जगह लग जाती थी।

और फिर अम्बरपुर का छोटा-सा क़िला और उसमें अधिक से अधिक सौ लड़ने वाले और एक तोप। बात की बात में मय किले के सब के सब धूल में मिला दिये जावेंगे।

एक जनरल ने दूसरे से कहा—'ये पागल हैं या बिलकुल ही मूर्ख ?'

'हो सकता है तोपें कई हों, क्योंकि अवध में जब हमारी अमलदारी हुई तब कई ताल्लुक़ेदारों ने अपनी-अपनी तोपें मिट्टी में गाड़ कर रख दी थीं। इन लोगों ने ये दबी छिपी तोपें अब निकाल ली हों।'

'जासूस को पता न चलता ? तोप एक ही है और आदमी सौ से ज्यादा नहीं होंगे। ताज्जुब यही है कि हमारी इतनी फौज का मुकाबला करने की ये हिमाकत क्यों कर रहे हैं।'

'कहीं से कुछ मदद पाने की उम्मीद कर रहे होंगे।'

'हो सकता है, लेकिन हमें सही खबर मिली है कि आसपास तो क्या दूर भी इनका कोई मददगार नहीं है।'

'इनके खतम करने में देर नहीं लगनी चाहिये, लखनऊ जल्दी पहुँचना है।'

× × × ×

अम्बरपुर घेर लिया गया। किला मजबूत था, परन्तु अंग्रेज़ी तोपें उसकी धूल उड़ा देने के लिये बहुत काफी थीं। किले में वास्तव में एक ही तोप थी। जासूस ने सूचना ग़लत नहीं दी थी। परन्तु लड़ने वालों की संख्या उसने सही नहीं बतलाई थी। वे सौ नहीं थे, केवल चौंतीस थे और मुकाबले में आक्रमणकारी बीस हज़ार !!

किले की प्रचीर के छेदों में से उन्होंने दीमकों की तरह फैली हुई अंग्रेजी सेना देखी। सूर्य के प्रकाश में तोपें, सैनिकों की कलगियां, बन्दूकों के ऊपर लगी हुई संगीनें दमक रही थीं। ये सब इन चौंतीस ने देखीं। फिर अपनी उस एक तोप की तरफ देखा।

उनके नायक ने अपने साथियों को एक जगह इकट्ठा करके कहा—'जब तक दम में दम है फिरंगियों को यहां से आगे नहीं बढ़ने देंगे।'

'नहीं बढ़ने देंगे।' उन सबने मुट्ठियां कसकर छाती ताने सिर उठाये कहा।

'पहले इसके कि गोरे हमारे ऊपर गोलाबारी करें हमें अपनी तोप में बत्ती लगा देनी चाहिये। नायक ने समझाया और चौंतीसों योद्धाओं ने एक दूसरे से गले मिलकर अन्तिम राम राम की। कण्ठ किसी का नहीं कांपा, भौहों पर बल किसी के भी नहीं आया, गला किसी का नहीं भर्राया, उनके सटे ओठों पर भीनी-सी मुस्कान थी, क्योंकि वे जानते थे कि क्या करने और क्या पाने जा रहे हैं।

वे सब किसान थे, अवध के किसान। तोप चली। क़िले की फसील के छेदों में से कड़ाबीनों ने आग उगली। अंग्रेज़ों का एक मोर्चा तितर-बितर हो गया। इन चौंतीसों ने देखा कि अंग्रेज़ अपने हताहतों को उठा-उठा कर पीछे किसी सुरक्षित स्थान पर लिये जा रहे हैं।

अंग्रेज़ों की तरफ से तोपों और राइफ़िलों ने मौत उगलना शुरू कर दी। क़िला टूटने लगा। दीवारों और बुर्जों की धूल उड़ने लगी। परन्तु वे चौंतीस अपनी-अपनी जगह पर अडिग थे।

अंग्रेज़ी तोपों के फटने वाले गोलों ने बुर्जों और दीवारों को तोड़ते हुये उन योद्धाओं पर भी वार किया। माघ महीने का उतरता पक्ष था। सूर्य की सुनहली किरणों में किले की बुर्जों और दीवारों के रज-कण मिल-मिल कर उन योद्धाओं के रक्त की बूँदों को एक-एक सूर्य सा बना रहे थे। किले से थोड़ी ही दूर जंगल था। जंगल के पलाश वृक्षों के पत्ते गिर चुके थे, लाल-लाल कलियां हरी-हरी टहनियों पर उमगने लगी थीं। तोपों के धुयें में से वे इन सूरमाओं के परम वीर बलिदान को झांक-झांक कर कुम्हला सी रही थीं। तीसरा पहर लग गया, परन्तु अम्बर के किले से तोप अब भी गरज रही थी, कड़ाबीनें अब भी कड़क रही थीं।

चौंतीस में से एक गिरा, दो गिरे और गिरते चले गये, पर उनमें से किसी ने भी अपने ठिकाने से हटने की बात भी नही सोची। जहां जो खड़े-खड़े या बैठे-बैठे बन्दूक चला रहा था वहीं शत्रु की गोली खाकर रह गया—मेरे जीते जी तो अंग्रेज वहां से आगे नहीं बढ़ सकेंगे, केवल यही एक धुन मन में थी और अन्त तक रही! संध्या होने में देर थी कि उन चौंतीस में तैंतीस स्वतन्त्रता संग्राम की वेदी पर बलिदान हो गये। उधर अंग्रेजी सेना के हताहतों की संख्या पचास हो गई।

यहाँ अभी एक बचा था। उसने इधर-उधर देखा। बाहर से गोले बरस रहे थे। गोलियों का धुआंधार हो रहा था। उसके साथियों की लाशें अपने अपने मोर्चे पर अडिग पड़ी थीं। उनकी मुट्ठियों में जकड़ी हुई कड़ाबीनें भी निश्चिल हो गई थीं।

उस एक ने मन ही मन कहा—एक मैं तो अभी हूं।

अम्बरपुर की तोप अपने वीर चालक के साथ ही ठंडी पड़ गई थी। पर यह अपनी बन्दूक भर-भर कर चलाये जा रहा था। उसके ओठ से ओठ सटे थे। धूल और धुएं से सना पसीना बह-बह कर उसके लोहलुहान शरीर को शाबाशी दे रहा था। उसके सामने की

दीवार टूट चुकी थी। थोड़ी-सी आड़ ले-लेकर वह गोली चला रहा था। एक बार आड़ में से उसका सिर जरा-सा निकला, बाहर से गोली आई और वह अपनी बन्दूक पकड़े ही दीवार के ढेर से टिक कर अपने तेतीस साथियों से जा मिला।

अम्बरपुर के क़िले से अंग्रेज़ों पर अब कोई गोली नहीं आ रही थी। थोड़ी-सी देर में धूल और धुआँ बैठ गया। अंग्रेज़ों को अम्बरपुर का दुर्ग साफ दिखलाई पड़ने लगा।

अंग्रेजी सेना जयघोष करती हुई क़िले में घुस आई। बन्दूक़ों पर सङ्गीनें चढ़ाये, ताकते-झाँकते गोरे सैनिक बाकी के बचे हुये योद्धाओं को क़ैद करके तुरन्त फांसी देने के लिये खोजबीन करने लगे।

एक भी न मिला।

कहाँ गये ये सब ? जनरल ने प्रश्न पर प्रश्न किये। उत्तर मिलने में देर नहीं लगी। उन योद्धाओं के शवों ने बतला दिया—अब तुम्हारी फाँसी पाने के लिये एक भी बाकी नहीं रहा।

'ऐं ! ये कुल चौंतीस थे !! इन्होंने हम हजारों का मुक़ाबला किया !!! ओफ !!!!'

'ये सब हीरोज, परमवीर थे।' जनरल फ्रैन्क्स ने अपने सहयोगी से कहा !

अस्ताचलगामी सूर्य मानों कह रहा था—निस्सन्देह वे परम वीर थे, मैंने दिन भर आज इनका शौर्य देखा है। इनका नाम अनन्त काल तक मेरी किरणों को जगमगाता रहेगा।

और पलाश वृक्ष की वे कलियां क़िले को और उन सूरमाओं के शवों को देख-देख कर अपनी बोली में कह रही थीं, हम अनन्त काल तक इनकी स्मृति पर अपने फूल बरसाया करेंगी, इन्होंने अपने त्याग, बलिदान और पराक्रम से अम्बरपुर को सचमुच अमर कर दिया।

क़ायदे की बात

पलाश की टहनी-टहनी में जो गहरे लाल रंग के फूल महीने-भर पहले पत्तियों को झाड़ कर निकले थे, अब गिर चुके थे। चमकती हरी पत्तियां पूरे उभार पर आ चुकी थीं, इन पत्तियों में कहीं-कहीं कुछ फूल अब भी खिल रहे थे, मानो गये दिनों की याद दिलाते हों। झाँसी से दक्षिण-पूर्व लगभग अस्सी मील पर बानपुर के आसपास केवल पलाश ही के पेड़ न थे। नीम के पेड़ भी थे और फूल-फूलकर इतरा-से रहे थे, नन्हे-नन्हे फूलों से लदे, सुगंधि से भरे। संध्या की बेला थी। लू की गरमी कुछ कम हो गई थी, पर, तेजी उतनी ही रही होगी। घोड़े पर सवार एक अंग्रेज कुल अर्दलियों के साथ बानपुर नगर की ओर जाने वाली सड़क पर धूल उड़ाये चला जा रहा था। उसकी आंख बानपुर नगर के बाहर वाले ऊँचे वृक्षकुंज पर बार-बार जा अटकती थी। उस कुञ्ज के नीचे से कुछ तम्बुओं के शिखर झाँक रहे थे। उस अंग्रेज को वहीं ठहरना था।

सूर्यास्त के पहले वह उन तम्बुओं के पास पहुँच गया। कुछ लोग अगवानी के लिये खड़े थे। जैसे ही वह घोड़े से उतरा, सईस ने घोड़ा थाम लिया। थोड़े से स्वागतकर्ता सलाम कर चुके थे, कुछ ने अब की। कायदे के सलाम की कमी दोनों में थी। वे सब बहुत कम झुके थे।

लू का ताव खाये हुये अंग्रेज के दिमाग को नीम के फूलों की सुगंधि ने सहलाने का शायद पूरा प्रयास नहीं कर पाया, क्योंकि, वह कुछ बैठे गले से बोला—'यह क्या बदतमीजी है ?'

अगवानी करने वाले नहीं समझे।

उसने जारी रखा—'तुम अपने राजा-नवाबों के साथ इसी तरह का अदब-कायदा बर्तते हो ?'

उन लोगों ने अपने-अपने सिर को साधारण-सा झुकाव दिया था–किसी-किसी ने तो यों ही हाथ उठा दिये थे।

अपने राजा-नवाबों को बहुत झुककर प्रणाम करते, उस अंग्रेज ने लोगों को ग्वालियर, इन्दौर, भोपाल इत्यादि स्थानों में देखा था। अंग्रेजों को उतनी नतमस्तकता साधारण-जन नहीं देते थे। यह अंग्रेज उतनी ही प्राप्त करने का आग्रह और हठ किया करता था। उसकी धमकी पर लोगों को झुक जाना पड़ता था, पर यह उन्हें अखर जाता था। किन्तु, बानपुर के ये लोग, जिनमें बानपुर नगर के कुछ व्यापारी-महाजन भी थे, उस फटकार पर भी नहीं झुके। अंग्रेज चन्देरी का डिप्टी-सुपरिंटेंडेंट था। बानपुर के फौजदारी मामलों को सुनने और तय करने का अधिकार इसी को था।

तो भी वे नहीं झुके।

'तुम्हारी समझ में नहीं आया ? बहुत बेवकूफ हो।' अंग्रेज ने आतंक जमाने-फैलाने का प्रयत्न किया।

एक महाजन ज़रा आगे बढ़कर बोला—'बहुत झुककर प्रणाम हम लोग अपने देवी-देवताओं को करते हैं, उससे कम अपने राजा को...' आगे कुछ न कहकर महाजन चुप हो गया।

महाजन का इतना ही सा साहस अंग्रेज डिप्टी के आतंक से जा भिड़ा, उसने अपना क्षोभ दूसरी तरफ उचटाया—

'राजा साहब—राजा मर्दनसिंह कहां हैं ?'

'यहीं, अपने किले में'–उसे उत्तर मिला।

बानपुर के राजा का किला बानपुर की बस्ती के एक छोर ही पर था।

'उन्हें मालूम है कि हम यहां आ रहे हैं–क्यों नहीं आये ?'

अगवानी के लिये आये हुये लोगों में से एक ने कहा—'यह तो वही जानें। कल उनको लू छू गई थी। शायद मन ठीक न हो।'

लम्बी-सी 'हूं'—भरकर डिप्टी एक तम्बू में चला गया। अगवानी के लिये आये लोगों से उसने बैठने तक के लिये नहीं कहा। वे सब खिन्न होकर लौट गये।

उनमें से कुछ रात के समय राजा मर्दनसिंह के पास किले में पहुँचे। डिप्टी के उस बर्ताव की बात सुनाई। 'महाराज; शिन्दे-सरकार के तो नौकर थे ये फिरङ्गी!'—एक ने कहा।

'नौकर से अब मालिक हो गये हैं, हम सब की फूट के कारण।' राजा मर्दनसिंह ने टीका की।

'गिनती में तो ये बहुत हैं नहीं और फूट भी मिटाई जा सकती है।'—एक और बोला।

'सारे जनों का मन पक्का हो जाय, तो हमारी आपसी फूट भी बह जायगी।'—मर्दनसिंह ने बढ़ावा दिया।

'हम अपने राजाओं की सब कुछ सह लेते हैं, क्योंकि उन्हीं में रहना है और वे हमारे ही हैं, हमारे होकर ही चलते हैं, पर ये परदेशी फिरंगी! राम राम, इनकी बोलचाल तो नहीं सही जाती।'

'तुम सबका साथ मिल जाय, बस फिर हम भिड़ जाने के लिये तैयार हैं।'

जनता के उन लोगों के मन में बहुत पहले ही से यह भावना थी।। वे लोग खुल पड़े—

'सुना है कि झांसी की रानी भी चुपचाप कुछ कर रही हैं, और शाहगढ़ के महाराज बख़तबली भी।'

'इधर अपने इलाके के ठाकुर भी अवसर की खोज में हैं।'

'तुम्हें कैसे मालूम?' मर्दनसिंह को आश्चर्य हुआ।

वे लोग इस प्रश्न में अपनी सराहना अवगत करके प्रसन्न हुये।

एक ने उत्तर दिया—'महाराज, ऐसी बड़ी बातें हम गांव वालों को बहुत जल्द मालूम हो जाती हैं।'

'अंग्रेज़ों को न मालूम हो जाय!' मर्दनसिंह ने शंका की।

'महाराज, फिरङ्गियों से गांव वाला कोई कहने नहीं जायगा। अपने धरम-करम पर कोई भी लात नहीं मारेगा।'

'एक दिन आ रहा है, शायद जल्द ही आ जायगा, जब देश की रक्षा के लिये हम सब एक साथ खड़े हो जायँगे। तुम सबको तैयार रहना है।'—मर्दनसिंह ने अपनी योजना का एक अङ्ग उन सबके मन में बैठाया।

'हमें तैयारी ही कितनी करनी है, आप जहां ले चलेंगे, हम सब चल देंगे'—उन लोगों के आश्वासन का सार था। उनमें एक बिलकुल चुप बैठा था।

मर्दनसिंह ने उससे कहा—'कुँवर गणेशजू, तुम क्या सोच रहे हो?'

उसने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—'महाराज, मुझे क्या सोचना है? फिरंगियों ने हम छोटे-छोटे ठाकुरों की जागीरें छीन ली हैं। इसका दुख तंग किया करता है। जब आपका हुकम होगा, हथियार लेकर खड़े हो जायँगे।'

'तुमसे बात करूँगा कुँवर साहब!'

जब बस्ती और गांव के अन्य लोग चले गये, मर्दनसिंह और गणेशजू में चर्चा चली।

गणेशजू ने अपने मुँह पर गदेली फेरी। बाल मुँड़ाए था, थोड़े-थोड़े निकल आये थे, उसके चेहरे पर कालोंच-सी थी। बोला—'मेरे पिता का स्वर्गवास हुये थोड़े ही दिन हुये हैं। उधर वह स्वर्ग सिधारे, इधर अंग्रेजों ने मनकापुर की हमारी जागीर जब्त कर ली—'

मर्दनसिंह ने तुरन्त बात काटी—'चन्देरी पर राज हमारा रहा है। हमने तुम्हें पगड़ी बांध दी है। जागीर तुम्हें मिलेगी।'

गणेशजू ने मर्दनसिंह के पैर छुये और कहा–'महाराज ने कृपा करके पगड़ी तो मेरे सिर पर बांध दी है, पर, अंग्रेज जागीर तो नहीं दे रहे हैं।'

'मिल जायगी, कुछ तुम्हें भी तो करना पड़ेगा।'

'क्या महाराज ?'

'वही जो सब कोई करने पर उतारू हैं—फिरङ्गियों के विरुद्ध क्रान्ति। तुमने भी अभी-अभी तो कुछ कहा था न ?'

'सो तो महाराज, जैसे और जागीरदार तैयार हैं, वैसे ही मैं भी हूं, पर, चन्देरी को तो शिन्दे अपनी बतलाते हैं।

'बतलाते रहें। शिन्दे आने वाली क्रान्ति में अँग्रेजों का साथ दे लें, जनता हम लोगों के साथ रहेगी।'

'हाँ महाराज'—गणेशजू ने समर्थन किया, परन्तु उसे खांसी आ गई थी।

छब्बीस वर्ष पहले, सन् १८३१ में, शिन्दे और अँग्रेजों की अनबन के फलस्वरूप अँग्रेजों ने चन्देरी परगने पर अधिकार कर लिया। मर्दनसिंह के पिता मोरप्रह्लाद का दावा चन्देरी पर बहुत पहले से चला आया था। अँग्रेजों ने करार करके दो-तिहाई भाग शिन्दे को दे दिया और एक तिहाई मोरप्रह्लाद को। पाली, जाखलौन और मानकपुर के ठाकुर बिगड़ पड़े, क्योंकि उनका भी इस परगने के कुछ खण्डों पर दावा था। अँग्रेजों ने फिर बटवारा किया। मोरप्रह्लाद को जो तिहाई भाग दिया था, उसके तीन टुकड़े किये गये–दो टुकड़े मोरप्रह्लाद को और एक में वे सब ठाकुर! उसी समय, सन् १८३३ में, मोरप्रह्लाद का देहान्त हो गया। चन्देरी को लेकर बानपुर के राजा और शिन्दे एवं उनकी समर्थक अँग्रेज सरकार के बीच वाद-विवाद चलता रहा। सन् १८४४ में अँग्रेजों ने शिन्दे वाला भाग अपने शासन में कर लिया। बस, बानपुर का राज्य एवं सम्पूर्ण ठाकुरों के ठिकाने कम्पनी की 'हकूमत' में आ गये। चन्देरी में अँग्रेज डिप्टी

नियुक्त कर दिया गया, जो रोब-दाब फैलाने और जमाने के लिये वह सब किया करता था, जो उसने उस दिन बानपुर में किया था। सन् १८५७ के अप्रैल में गणेशजू के पिता का देहान्त हुआ। कम्पनी सरकार ने जागीर जब्त करली, क्योंकि, उसे उस ठिकाने की जरूरत थी। मर्दनसिंह ने गणेशजू को अपने पक्ष में करने के लिये पगड़ी 'बख्श' दी। परन्तु इतने ही से क्या होना था? गणेशजू असन्तुष्ट था। सन् १८५७ के मई के महीने में सब जगह गर्मी छा गई और उथल-पुथल होने लगीं।

डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट उसी की छानबीन करने और हर तरह कम्पनी सरकार का आतंक दृढ़ करने के लिये बानपुर आया था।

जब गणेशजू खांस चुका, मर्दनसिंह ने कहा—'पूरे हिन्दुस्थान में सब जगह एक साथ क्रांति होगी। फिरंगियों को देश-बाहर करने की योजना अपने बुन्देलखण्ड, अवध, बिहार, पञ्जाब, राजस्थान और दक्षिण में भी तैयार हो चुकी है। तुम तैयार हो जाओ और अपने पड़ोसियों को भी तैयार रखो। तुम्हें अपनी जागीर मिल जायगी और किसान, मजदूर, दूकानदार, बुनकर, धुनकर, सुनार, चमार, लुहार, बढ़ई इत्यादि सब अपने-अपने काम और रोजगार पनपा लेंगे।'

गणेशजू के चेहरे पर प्रसन्नता छा गई।

'तुम्हें अपनी जागीर मिल जायगी।' उसके मन के कोने-कोने में बजबजा उठा।

दूसरे दिन अँग्रेज डिप्टी मर्दनसिंह से मिला, उसके भ्रम को पुष्टि प्राप्त हो गई कि आतंक जम गया और वह दूसरे स्थानों के दौरे पर चला गया।

गणेशजू एक दिन चन्देरी जा पहुँचा। चन्देरी का डिप्टी कलेक्टर और डिप्टी मैजिस्ट्रेट जैनुलाब्दीन नामक एक व्यक्ति था। कम्पनी-सरकार का स्वामिभक्त, रोब-दाब कसने में अपने उस अँग्रेज अफसर—डिप्टी सुपरिन्टेण्डेण्ट—से दो हाथ आगे और कायदे का बड़ा पाबन्द।

गणेशजू उससे घर पर अकेले में मिला। चपरासी को एक रुपया रिश्वत में देकर मुलाकात मोल ले पाई थी।

'हुजूर', गणेशजू ने अपनी प्रार्थना का प्रारम्भ किया।

'क्या है ?' रुखाई के साथ डिप्टी साहब ने पूछा।

'अमलदारी की बात करनी है हुजूर ! गजब होने वाला है।'

'अमलदारी और गजब की बात कचहरी में आकर करो, यहाँ नहीं।'—डिप्टी साहब ने फरमाया और घर-भीतर हो गये।

गणेशजू दूसरे दिन डिप्टी साहब के सामने कचहरी में पहुँचा।

'हुजूर ग़दर होने वाला है।'—गणेशजू ने जोर के साथ कहा।

'किस बात का गदर ?' डिप्टी साहब ने खिसियाये स्वर में पूछा।'

'कम्पनी—सरकार के खिलाफ गदर।'

डिप्टी साहब ने आदेश दिया—'आज के लिये हमने जितना काम मुकर्रर कर रखा है, उसके अलावा न कुछ और सुनेंगे, न करेंगे। हटो।'

गणेशजू कचहरी के बाहर चला गया, परन्तु जागीर का मोह उसके पीछे पड़ा था। दूसरे दिन फिर डिप्टी साहब की कचहरी में जा पहुँचा।

उसने फिर वही 'फरियाद' की—'हुजूर गदर होने वाला है, बहुत जल्द गदर मचने वाला है। बहुत से राजा-प्रजा उसमें शामिल हो रहे हैं। मानकपुर की जागीर मेरी फिर से बहाल करने का वचन दें, तो मैं विद्रोहियों के नाम भी बतला दूँगा।'

डिप्टी साहब बोले—'दरख्वास्त दो, जबानी नहीं सुनूँगा।'

'दरख़्वास्त !'

'हां जी, दरख़्वास्त। कायदे में है, बिना दरख़्वास्त के जबानी कुछ नही सुन सकता।'

गणेशजू 'दरख़्वास्त' लिखा लाया। उसने जो कुछ जबानी कहा था, वही 'दरख्वास्त' में भी था।

'वक्त गुजर गया दरख्वास्तें लेने का'—डिप्टी साहब ने कहा।

'लेकिन, हुजूर मामला बहुत नाजुक है।'

'होगा, बना रहे। मैं कायदे के खिलाफ कुछ नहीं कर सकता। और देखो, यह जो तुम पीले कागज पर लिखा कर लाये हो, वह मैं नहीं लूँगा। सफेद पर लिखवा कर लाना।'

गणेशजू को लौट आना पड़ा।

गणेशजू तीसरे दिन 'सफेद' कागज (कालपी वाले) पर फ़रियाद लिखवाकर ले गया। डिप्टी साहब ने हाथ में लेते ही वापिस कर दी।

बोले—'टिकिट लगाकर लाओ। क़ायदा है। इसे डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब बहादुर के पास भेजना पड़ेगा।'

गणेशजू को कुछ क्षोभ हो आया–'टिकिट लगवा लाऊँ! सरकार पर आफत के बादल मँडरा रहे हैं, वज्रपात होने वाला है और आप कहते हैं कि टिकिट लगा कर लाऊं दरख्वास्त!'

'अजी कायदे की बात है। बिना टिकिट लगी दरख्वास्त की किसी भी बात को नहीं सुन सकता। तुम्हें अपनी जागीर भी तो वापिस लेनी है!'

डिप्टी साहब ने सोचा बढ़िया बात कही और हँसे। गणेशजू के कलेजे में वह सुई-सी छिद गई। गणेशजू चला आया। उसने दरख्वास्त फाड़कर फेंक दी।

परन्तु, बात फैल गई। वह न इधर का रहा, न उधर का–दोनों दीन से गये पाँडे, हलुआ मिला न माँडे!

और क्रांति तो वैसे भी होनी थी, हुई और फैली। थोड़े ही दिनों के उपरान्त चारों ओर आग-सी लग गई।

डिप्टी साहब और डिप्टी साहब के बड़े साहब-डिप्टी सुपरिंटेंडेंट बड़ी कठिनाई से अपने बोरिये-बँधने समेत ग्वालियर की ओर नौ-दो-ग्यारह हो पाये। उनके लिये वह भी शायद कायदे की बात रही हो! और गणेशजू के माथे पर जो कालौंच पुती, वह किसी भी कायदे ने कभी नहीं धो पाई।*

---

*'Revolt in Central India' P. 18 के आधार पर।

देशद्रोही का मुँह काला

१८५७ के सितम्बर महीने का तीसरा हफ़्ता समाप्त होने जा रहा था। दिल्ली का घेरा डाले हुये अंग्रेज़ी सेना को काफी समय हो गया था। दिल्ली अंग्रेजी सेना का मुकाबला बड़ी दृढ़ता के साथ कर रही थी। अंग्रेजी सेना में दृढ़ अनुशासन था, दिल्ली की सेना में इसकी कमी थी। अंग्रेजी सेना अपने जनरल विलसन के इशारों पर चल रही थी, क्रान्तिकारियों की सेना के जनरल बख्तखां की पूरी तरह नहीं चल पाती थी। ऐसी हालत में जो होना था वह हुआ। एक दिन अँग्रेज़ी सेना जय जयकार करती हुई शहर में घुस पड़ी। जनरल ने हुक्म दिया, 'लूटो और मारो।'

लूट मार की, क़त्ल किये और अँग्रेज़ी सेना चिल्लाई—'महल पर धावा करो! महल पर क़ब्ज़ा करो!! बहादुर शाह बादशाह को गिरफ्तार करो!!!

अँग्रेज़ी सेना भीतर घुसी। सब तरफ़ सन्नाटा! महल के एक एक फाटक पर केवल एक एक पहरेदार!! खड़ा था वह पत्थर की मूर्ति की तरह। हाथ में उसके बन्दूक थी, परन्तु आक्रमणकारियों पर उसने सीधी नहीं की। करता भी क्या! वह एक अकेला। ये थे सैकड़ों हज़ारों! पर वह पहरेदार वहां खड़ा ही क्यों था? उसको अपने अफ़सर का आदेश मिला था इसलिये खड़ा था! मेरे जीते जी महल में फिरङ्गी नहीं घुस पावेगा इसलिये खड़ा था। भीतर से जब तक कोई हुक्म न मिले इसलिये भी वह पत्थर की मूर्ति की तरह अपने स्थान पर खड़ा था।

बन्दूकें ताने 'फिरङ्गी' उसके सामने चले आ रहे थे। पहरेदार के कन्धे हिले, कलाही फड़की और उसने दम साधी। 'दागो' की

आवज़ तो कान में पड़े, मार के मारूंगा। परन्तु भीतर से कोई आदेश न मिला। आक्रमणकारियों की गोलियां सिर और छाती में पड़ीं। पहरेदार जैसे खड़े थे वैसे ही गिर गये। उनके मुँह से उफ़ तक न निकल पाया। अँग्रेज़ी सेना महल में घुस गई। गोरे सिपाहियों के हर्ष का ठिकाना न रहा। विश्वास था कि बादशाह बहादुर शाह अपने कुटुम्ब कबीले सहित तो गिरफ्तार होगा ही अकूता माल खज़ाना भी हाथ लगेगा।

भीतर देखें तो कुछ भी नहीं—बादशाह तो क्या बादशाह का वहां हुक्का तक नहीं! बिल्कुल सुनसान, एकदम सन्नाटा!! तो ये सब कहाँ गये? किधर से निकल भागे?

परन्तु अँग्रेज़ी सेना को अधिक समय तक हैरान नहीं होना पड़ा। उनके साथ दो देश-द्रोही लगे हुये थे। एक का नाम रज्जबअली था और दूसरे का मिर्जा इलाही बख्श। मिर्जा इलाही बख्श बादशाह बहादुर शाह का नाते रिश्ते में समधी होता था। रज्जब अँग्रेजों के साथ खुल्लमखुल्ला था—इलाही बख्श गुप शुप—ऊपर ऊपर बहादुर शाह से मिला हुआ भीतर भीतर अँग्रेजों के साथ।

रज्जब अली पता न लगा सका कि बहादुर शाह कब किधर गये तो इलाही बख्श ने बताया—'हमायूँ के मकबरे के आस पास हैं बादशाह।'

अँग्रेजों के सेनानायक जनरल विलसन ने कहा—'हिमायूँ के मकबरे के पास! कब और कैसे निकल गये यहाँ से? कितने आदमी होंगे उनके पास?'

इलाही बख्श ने उत्तर दिया—'सुरंग के जरिये कल सब के सब निकल गये। पहरेदारों तक को नहीं मालूम पड़ पाया। मुझे भी आज पता लगा।

तभी बिचारे पहरेदार यों मारे गये! विलसन ने सोचा और पूछा,—'बादशाह के पास कितने लोग होंगे वहाँ?'

उसने उत्तर दिया—'छः हज़ार सिपाही और आठ-दस हज़ार ऐरे-गैरे लेकिन हैं सब के सब हथियारबन्द। उनका जनरल बख्तखां भी साथ में है।'

'बख्तखां को हमारे लिये फोड़ सकते हैं आप मिर्ज़ा जी!' जनरल विलसन ने सवाल किया।

'नहीं हज़ूर उसमें दिमाग़ ही नहीं है। वह कुछ सोच-विचार ही नहीं सकता।' मिर्ज़ा इलाही बख्श का जवाब था।

विलसन ने समझ लिया कि बख्तखां पक्का देशभक्त और स्वामिभक्त है। विलसन एक क्षण चुप रहा।

'हज़ूर' इलाही बख्श ने सुझाया,—'बादशाह शरीफ अगर दिल्ली के आस-पास से कहीं दूर चले गये तो आपको जगह-जगह लड़ाकू गिरोहों का मुक़ाबला करना पड़ेगा।'

विलसन दिल्ली को बड़ी कठिनाई से हाथ में कर पाया था। घिघियानें से स्वर में उसने इलाही बख्श से कहा,—'नवाब साहब, किसी तरह भी बादशाह को हमारे सिपुर्द करादें तो कम्पनी सरकार आपको मुँह माँगा इनाम देगी। बहुत सी खून खराबी बच जावेगी। भरोसा करिये कि बादशाह का बाल बांका न होगा।'

इलाही बख्श ने दिल्ली में जो जन वध उन्हीं दिनों देखा था वह उसे भूल नहीं सकता था। फिर भी उसे अपनी चिन्ता पहले थी। बोला,—'बादशाह अपने साथ कीमती जेवर और हथियार भी लेते गये हैं।

'कीमती हथियार? कौन से हथियार?' विलसन ने पूछा। विलसन को हथियारों पर पहले ध्यान देना पड़ा।

इलाही बख्श ने बतलाया—'शाहनशाह अकबर, जहांगीर वग़ैरह की हीरे-जवाहर-जड़ी तलवारें...' वह कुछ और ब्योरा भी देना चाहता था, परन्तु विलसन ने रोक दिया क्योंकि वह हथियारों की बहुमूल्यता पर विचार नहीं कर रहा था, वह हथियारों के प्रयोग से

पैदा होने वाले संकट की बात सोच रहा था। तलवारें हमारा क्या कर लेंगीं ? परन्तु बख्तखां और उसके छः हजार सिपाही बहुत आफ़त पैदा कर सकते हैं और बादशाह खिसक गया तो मुसीबत पर मुसीबत आने की आशङ्का है—विलसन की कल्पना में समाया।

उसने इलाही बख्श से अनुरोध किया—'नवाब साहब, बात तब है जब बादशाह बिना लड़ाई भिड़ाई करे कराये हमें आत्म-समर्पण करदें। इलाही बख्श ने स्वीकार किया।

बादशाह बहादुरशाह अपने परिवार और साथियों सहित हुमायूँ के मकबरे में थे। फौज-फांटा आस पास की बस्ती में डटा हुआ था।

बहादुरशाह बहुत वृद्ध थे, परन्तु उनमें उत्साह था, कभी कभी कविता भी कर डालते थे। मकबरे के एक छोटे से स्थान में बैठे बहादुरशाह भविष्य की योजना पर सलाह कर रहे थे।

बख्तखां आग्रह कर रहा था,—'जहाँपनाह यहां से कूच करदें। जगह जगह लोग मुल्क के लिये, आपके लिये लड़ मरने के लिये तैयार हैं।'

मिर्ज़ा इलाही बख्श हतोत्साहित कर रहा था, 'जहांपनाह, लड़ाई बेकार है। लड़ाई में खून खराबी और बरबादी के अलावा और कुछ भी हाथ नहीं लग सकता।' इलाही बख्श ने अंग्रेजों के हथियारों, सेना की संख्या और उनके साधनों को बढ़ा चढ़ा कर सराहना की। बादशाह का मन गिर गया वह थोड़ी देर चुप रहे। फिर उन्होंने एक कविता कह डाली—

'दम दमें में दम नही अब खैर मांगो जान की,
ऐ जफ़र ठण्डी हुई तलवार हिन्दुस्तान की,'

बख्त खां के कलेजे में कांटा सा चुप गया। बोला,—'जहांपनाह, बेअदबी माफ हो। हिन्दुस्तान की तलवार ठण्डी होना नहीं जानती। न ठण्डी हो सकती। और न कभी होगी। लखनऊ में लड़ाई जारी है। झांसी की रानी अपने इलाके में फौलाद की तरह मजबूत है।'

बख्त खां कुछ और कहता, परन्तु बादशाह के रिश्तेदार मिर्जा इलाही बख्श के सामने उसे मन मसोस कर रह जाना पड़ा। मिर्जा ने अपनी व्याख्या पेश की,—'मैंने पता लगा लिया है, लखनऊ पर कम्पनी सरकार की अनगिनत फौजें पहुँच रहीं हैं और झांसी तो एक अलग सी पड़ी जगह है। अंग्रेजों का मुकाबला कितने घण्टों कर सकेगी ? खैर इसी में है जो जहांपनाह के शेर से बखूबी जाहिर हो रही है। आह ! क्या फरमाया है—'ठण्डी हुई तलवार हिन्दुस्तान की' बख्त खां की सब दलीलें व्यर्थ गईं। बादशाह ने आत्म-समर्पण का निश्चय किया। मिर्जा इलाही बख्श के द्वारा आत्म-समर्पण का समाचार भेज दिया गया।

बादशाह की गिरफ्तारी के लिये जनरल विलसन ने अपने एक अफसर कप्तान हौडसन को चुना। हौडसन बड़ा दम्भी, दर्पी, क्रूर, और दुस्साहसी सैनिक था। वह सेना की एक टुकड़ी लेकर हुमायूँ के मकबरे पर जा पहुँचा। उसने बादशाह के पास संवाद भेजा, 'अपने सब हथियार मेरे पास भेज दो। जरा भी गड़बड़ की तो कुत्ते की मौत मारे जाओगे।' अकबर और औरङ्गजेब के उत्तराधिकारी को एक साधारण फिरङ्गी की यह धमकी ! परन्तु इस धमकी के पीछे भारत का कितना इतिहास आंसू बहा रहा था !! बहादुरशाह को मानना पड़ा। वे कीमती तलवारें भी बहादुरशाह को हौडसन के सुपुर्द करनी पड़ीं।

पालकी में बैठ कर बहादुरशाह जनरल विलसन के सामने पहुँच गये और तत्काल कैद कर लिये गये।

हौडसन ने जनरल विलसन को सलाम फटकारा। जनरल बहुत प्रसन्न था। वहीं कहीं आशायें बांधें गम्भीर मुद्रा बनाये मिर्जा इलाहीं-बख्श भी उपस्थित था। जनरल ने हौडसन से कहा, 'मैं समझता था कि तुम या बादशाह कोई भी मेरे सामने न आ पाओगे।'

हौडसन ने फिर सलाम फटकारा और बोला,—'लेकिन हम दोनों आपके सामने आ गये।'

मिर्जा इलाही बख्श ने जनरल विलसन का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न किया। मानो कह रहा हो—इन दोनों का आपके सामने सहीसलामत आ जाना मेरे कारण हुआ।

'इनाम मिलेगा', जनरल ने हौडसन से कहा। और हौडसन को जनरल विलसन ने दो तलवारें भेंट कीं—एक जहांगीर बादशाह की जो उसकी कमर को सजाये रहती थी, दूसरी नादिरशाह की तलवार थी जिसे उसने बादशाह मुहम्मदशाह को भेंट किया था।

मिर्जा इलाही बख्श ने अपनी नियत उन तलवारों पर दौड़ाई। जनरल विलसन ने उसे उत्तर दिया,—'ये तलवारें इस सिपाही की कमर की शोभा बनेगी। इसने अपनी जान की बाजी लगाकर आज जो जौहर दिखलाया है ये तलवारें उस पर न्योछावर हैं। आपको तो कम्पनी सरकार कहीं की नवाबी बख्शेगी।'

इलाही बख्श को नवाबी मिली हो या न मिली हो, उस समय उसका मुँह अवश्य काला पड़ गया था। आंखें जहांगीर और नादिरशाह की तलवारों पर जा जाकर चेहरे पर स्याही फेर रहीं थीं।

बदले के साथ ही इङ्गलैंड का भला

गवर्नर-जनरल लॉर्ड वैलेजली को अवध की कुछ बातें बहुत पसन्द थीं, कुछ बहुत नापसन्द। अवध की उपजाऊ भूमि, व्यापक हरियाली, अनुकूल जलवायु तो मनभावनी थी ही, वहाँ की भूमि में आठ-दस हाथ नीचे ही अटूट पानी की सुलभता मनको ललचा-ललचा दे रही थी। किसी तरह अवध हाथ लग जाय, तो कम्पनी-सरकार, इङ्गलैंड-सरकार और अँग्रेजों के वारे-न्यारे हो जायँ। अवध का वह सब उसे बहुत पसन्द था। अवध की जनता को शांति—साहबों का राज, जमीन की पैमायश, अदालत, वकील, समय पर कौड़ी-कौड़ी लगान अदा करना, अमीन इत्यादि—सुलभ। यह सब मन में बसा था। बहुत नापसन्द था नवाब का ठाठ, नवाब की अय्याशी और नवाब की अय्याशी में विलायतियों—फ्रांसीसी, इटालवी, अँग्रेज़ इत्यादि का समर्थक, सहयोगी और सहायक होना। ये लोग नवाब के लिये बढ़िया से बढ़िया शराब जुटाते थे और देशी-विदेशी सुन्दरियों को ढूँढ़-खोजकर ले आने में भी प्रयत्नशील रहते थे। गुलछर्रे उड़ाते थे और उड़वाते थे।

वैलेजली के मन में आया कि अवध जब्त कर लिया जाय—अवध की हरियाली भूमि अपनी, शांति साहबी की, और नवाब की अय्याशी की समाप्ति, फिर कम्पनी की राजनीति का बोलवाला। परन्तु भारत में उस समय मराठे, सिख इत्यादि प्रबल थे, इसलिये रह गया। पृष्ठभूमि उसने अवश्य तैयार करली—नवाब की अय्याशी के साधन जुटाने वाले विलायती लखनऊ से हटवा दिये।

सन् ५७ की क्रांति के लगभग ३८ वर्ष पहले लखनऊ की गद्दी पर गाजीउद्दीन हैदर बैठा। जैसा कि रिवाज था नवाब को सरदारों-सामन्तों, सेठ-साहूकारों और बड़े लोगों ने तरह-तरह के तुहफे नजरें

भेंट की। एक दिन कलकत्ते से कम्पनी की फौजों का प्रधान सेनापति डलहौजी भी सलामी देने-लेने के लिये लखनऊ आया। यह जनरल डलहौजी लॉर्ड डलहौजी का पिता था, जो बाद में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य का गवर्नर-जनरल हुआ।

नवाब ने जनरल डलहौजी की बड़ी आवभगत की। भेंट से पहले ही जनरल डलहौजी को इतना आदर-सत्कार मिला कि अपने पद और अँग्रेज़ी राजमद के अभिमान में फूला नहीं समाता था। नवाब से भेंट करने का समय नियुक्त हुआ। बड़े ठाठबाट के साथ डलहौजी नवाब से मिलने के लिये चला। साथ में उसकी पत्नी थी। पत्नी सुन्दर थी और यौवन के ज्वार पर। फूलों से लदी सुनहली घोड़ा गाड़ी पर बैठे वे दोनों नवाब के महल में पहुँचे। नवाब ने बड़ी शिष्टता के साथ स्वागत किया। आम-दरबार के बाद खास-दरबार हुआ। खास दरबार में थोड़े से हीं लोग थे। जनरल डलहौजी के साथ उसकी मेम भी थी। मोतियों की माला गले में डाले थी, पुष्पों से सजी हुई।

आम दरबार में नवाब निहारते-निहारते भी उसे अच्छी तरह नहीं देख सका था। खास दरबार में आँख गड़ाकर परखने का अवसर मिला। शराब ढली। सभी की आँखों में सरूर आया।

डलहौजी ने पत्नी को नवाब से हाथ मिलाने के लिये आगे बढ़ाया। नाच-गान की घड़ी आ रही थी। शराब काफ़ी चल चुकी थी। सभी मजे में थे। कोई झूम रहे थे, कोई आँखें फैलाये थे।

मेम हाथ मिलाने के साथ ही मुस्कराई। उसने अँग्रेजी में रिवाजी बात कही। नवाब नहीं समझा। सोचा उन फूलों और उस मुस्कान का समर्थक कोई वाक्य होगा।

गायन-वादन होने ही को था। नर्तकियां और साजिंदे एक दूसरे कमरे में उस समय थे। कमरे में सारङ्गी और घुंघरू की धीमी ध्वनि आगे बँधने वाले समा की सूचना दे रही थी। डलहौजी का पैर

नाचने के लिये कुर्सी पर बैठे-बैठे ही थोड़ा-थोड़ा-सा उठ रहा था। मेम गुनगुना उठी, पैर के पंजे हिलाये। नवाब ने प्रसन्नता के साथ लक्ष्य किया। उसे ग़लत-फ़हमी हो गई।

डलहौजी बोला,–'यह बहुत अच्छा गाती हैं, नाचती भी हैं।'

मेम साहब मस्ती में झूम गईं।

दुभाषिये ने नबाब को डलहौजी की बात समझाई। दुभाषिया हिन्दुस्तानी था।

नवाब ने कहा–'मैं इस खूबसूरत तोहफे पर निसार हूं।' दुभाषिये ने डलहौजी को अपनी अँग्रेज़ी में समझाया कि हिजमैजेस्टी नवाब साहब बहुत प्रसन्न हैं। लखनऊ के नवाब को अँग्रेज़ हिजमैजेस्टी (परमोच्च मान्य) का रुतबा दिये हुये थे। जनरल डलहौजी ने नवाब को सिर झुकाकर धन्यवाद दिया। नवाब की बांछें खिल गईं।

नवाब ताव पर था। दुभाषिये से बोला–'जनरल से पूछो कि इस तोहफे की क्या क़ीमत है? मैं दाम देकर इसे हरम में रख लूँगा।'

दुभाषिया थोड़ा-सा हड़बड़ाया।

नवाब ने हठ किया–'पूछता क्यों नहीं जनरल साहब से? वह इस खूबसूरती को मुझे नज़र करने के लिये ही तो लाया है। गाती है, नाचती है। वाह! वाह!! बड़ी खुशदिल भी है।'

दुभाषिये को डलहौजी से कहना पड़ा। डलहौजी को क्रोध आ गया, इतना कि खोपड़ी के आखिरी सिरे तक जा पहुँचा। थर-थर काँपने लगा। कुछ बक डालना चाहता था, परन्तु सटे हुये ओठ जबान को पगडण्डी तक नहीं दे पा रहे थे।

कई प्रकार की रुकावटों को रौंदकर अन्त में डलहौजी ने दुभाषिये से काँपते हुये गले से कहा–'यह बदतमीजी है। हिजमैजेस्टी से कहो कि कभी इस तरह की बात मुँह से न निकालें। यह मेरी बीबी है। वह माफी माँगें।'

डलहौजी की मेम का चेहरा पहले ही कुम्हला गया था।

दुभाषिये ने डलहौजी की बात बहुत हलकी करके पेश की—

'हुजूर, गरीबपरवर यह इस नाचने वाली को अपनी बीबी बतलाता है।'

'तो क्या हुआ ? नजर करने के लिये लाया है।'

डलहौजी कम्पनी के प्रधान सेनापति ने दाँत भींचकर दुभाषिये से कहा—'हिज मैजेस्टी मुझसे माफी माँगें।'

दुभाषिये ने हिचकी-सी लेते हुये सिकुड़कर नवाब को जनरल डलहौजी की बात का भुगतान किया—

'हुजूर, यह बड़ा अँग्रेज है। कुछ कुढ़ गया है। चाहता है कि खुदावन्द नियामत अफसोस ज़ाहिर करें।'

'बादशाह और अफसोस जाहिर करें! अपने ही दीवान-खास में। उसे नहीं बेचना चाहता है, तो न बेचे। भाड़ में जाय कमबख्त। अफसोस वह करे। लाख-डेढ़ लाख दे देते हम। अब रोवे अकेले में। गरज हो तो बैठा रहे और देखे-सुने हमारे यहाँ का नाचगान। हमारी ये नाचने गाने वाली ऐसी खूबसूरत हैं कि जिनकी सानी इन लोगों की विलायत में एक न होगी।' नवाब बहकता रहा।

डलहौजी को मतली आ रही थी। रस्मी ताजीम देकर पत्नी समेत चला गया। निवास-स्थान पर जाकर उसने अपनी डायरी में काफी कड़वी भाषा में नवाब की 'गुस्ताखी' की बात का विवरण लिख लिया।

(२)

जनरल डलहौजी के पुत्र लॉर्ड डलहौजी ने इस घटना के बहुत समय पीछे अपनी पिता की डायरी के वे पन्ने पढ़े और पढ़ते ही आग-बबूला हो गया—'अवध के नवाब की यह बदमाशी! यह कमीनापन!! अवध और अवध के नवाब और इसी के सारे हिन्दुस्तानी राजे-रजवाड़े जड़ से न उखाड़ फेंके, तो मेरा नाम नहीं। हिन्दुस्तान की प्रजा पर लानत, जो ऐसे नालायकों के राज को सहती, मरती रहती है!'

पार्लियामेंट में लॉर्ड डलहौजी की योग्यता और दृढ़ता की धाक बैठ चुकी थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हिन्दुस्तानी राज्य की गवर्नर जनरली का वह महत्वाकांक्षी था। प्रयत्न करते ही प्राप्त हो गई।

परन्तु, राज्यों की जब्ती का काम उसने अवध से आरम्भ नहीं किया। उस समय का नवाब वाजिदअलीशाह नियमपूर्वक काम कर रहा था। हर मनुष्य के भीतर कम-बढ़ मात्रा में वासनायें होती ही हैं। नवाब के भीतर भी थीं। उस सामंत-युग में अपनी वासनाओं के साकार करने का साधन पुष्ट हाथ में था। फिर भी वह उनके प्रवाह में बह नहीं रहा था। उसे बहाने, डुबाने की क्रियायें काम में लाई जाने लगीं, जिनमें उसके एक निज सम्बन्धी का भी हाथ था। परन्तु, प्रेरणा लखनऊ-प्रवासी अंग्रेजों से नवाब के उस सम्बन्धी को मिलती रहती थीं। अवध पर अंग्रेजों के दाँत गड़ चुके थे।

डलहौजी की काउन्सिल में अवध की एक रिपोर्ट पेश हुई:—

'नवाब बड़ा अय्याश और कुकर्मी है। जनता परेशान है, लेकिन स्वयं कुछ नहीं कर सकती। अवध के ताल्लुकेदार मनमाना लगान वसूल करके किसानों को लूट-लूटकर ऐश आराम में गर्क रहते हैं। ज़मीन अवध की ऐसी है कि दुनियां भर में उससे अच्छी शायद ही कहीं हो। जगह-जगह सात-आठ हाथ के नीचे पानी निकल आता है। यदि प्रबन्ध ठीक तौर से किया जाय—हकूमत अपने हाथ में कम्पनी सरकार ले ले तो अकेले अवध की आमदनी से सरकार के हिन्दुस्तान भर का खर्च चल सकता है। इंग्लेंड के कारबार और कम्पनी की रोकड़ में इतनी वृद्धि हो जायगी कि जिसका अनुमान करना इस समय कठिन है—और अवध की जनता तो निहाल ही हो जायगी...'

डलहौजी ने पूछा—'नवाब के पास फौज कितनी है?'

'चालीस हजार के लगभग। ताल्लुकेदारों ने अलग हज़ार-हज़ार पांच-पांच सौ आदमी और हथियार रखे हैं।' डलहौजी को उत्तर मिला।

'सब अय्याश हैं! सब!!'—डलहौजी चिल्ला पड़ा। कम्पनी की गवर्नर-जनरली उसे जवानी ही में मिल गई थी। जवानी के जोश और पद के मद की बाढ़-सी उसके भीतर आ गई।

डलहौजी कुछ क्षण चुप रहा। बाप के हाथ की लिखी डायरी के उन पन्नों का एक-एक अक्षर दिमाग में उछल-कूद करने लगा! काउंसिल के सदस्य सोच रहे थे कि डलहौजी शांति के साथ समस्या पर विचार कर रहा है। डलहौजी ने अपना निश्चय प्रकट किया—

'अवध को जब्त करना पड़ेगा।'

काउंसिल का एक सदस्य बोला—'अवध के साथ जो संधियाँ हुई हैं, उनमें से कुछ अनुकूल मसाला ढूँढ़ना पड़ेगा।'

'देख लिया, संधि-अंधि कोई चीज़ नहीं। हम हिन्दुस्तान भर के मालिक हैं—पेशावर और काबुल-कन्दहार तक के। अय्याशी, बदमाशी बिलकुल नहीं सही जा सकती। अवध को कम्पनी-सरकार के राज में मिला लिया जायगा।'

'नवाब को लखनऊ में रहने दिया गया तो वह बखेड़ा खड़ा कर सकता है।'

'क़ैद करके यहीं कलकत्ते में रख दिया जायगा। यहां मनचाहा ऐश करता रहे, मगर लखनऊ में उसे नहीं रहने दिया जायगा।'

'उन चालीस हज़ार सिपाहियों का क्या किया जाय?'

'आधे अपनी फौज में भर्ती कर लिये जायेंगे। हमारा नमक खाकर हमारी बजायेंगे और बाकी बीस हज़ार को फी-कस आठ आना महीना बांध दिया जायगा। बहुत है। घर बैठे खाते रहें। अटक पड़ने पर हमारे काम आ जायेंगे।'

'अब सवाल केवल यह है कि यह सब कब किया जाय?'

'अभी। अविलम्ब!' डलहौजी ने निर्णय किया।

'अवध का माली बन्दोबस्त भी बिना किसी देर के शुरू कर दिया जाना चाहिये।'

'मार्टिन गबिन्स बहुत होशियार आदमी है। तीन महीने के भीतर माली बन्दोबस्त करदे और लगान-वसूली का इन्तजाम पूरा पूरा।'

डलहौजी ने इस आदेश के साथ ही अवध की जब्ती के कागज़ पर ता० ७ फरवरी सन् १८५६ के दिन दस्तखत कर दिये।

उसे उस दिन बड़ा चैन मिला। अपने बाप—जनरल डलहौजी की डायरी के उन पन्नों के नीचे उसने लिखा—'नवाब की उस गुस्ताखी और बदमाशी का आज बदला चुका लिया, साथ ही अपने इङ्गलैंड का जो भला मैंने किया है, वह पीढ़ियों तक याद रहेगा।' उसी पीढ़ी में अवध ने डलहौजी को जो जवाब दिया, वह हमारे आगे तक की पीढ़ियाँ न भूलेंगी।

इस कहानी का ऐतिहासिक आधार—

'Life of Sir Charles Napier (1857) Vol. IV P. 296 Vol. V. P. 351 है—

'Sir Charles Napier relates an anecdote about Dalhousie's father, who, as the Commander-in-Chief in India, had occasisn to visit the Vizier (King of Oudh), getting angry at the innocent Nawab's imagining that the Commander's wife was being offered for sale when she was only being introduced !'

Napier adds—"This should certainly have figured among the reasons for annexing Oudh. This would have been stranger than anything yet adduced for that spoliation".

ऋण साफ ! और ईमान नहीं टूटा ।

सन् १८५७ में विप्लव शुरू हुआ नहीं कि प्रयाग के एक सेठ बड़ी कठिनाई में पड़ गये । एक एंग्लो इण्डियन पर इनका बहुत सा रुपया आता था ।

बड़ी आशा बाँधकर इसके पास पहुँचे और बोले, 'साहब, मुझे रुपये की बड़ी जरूरत है—'

साहब ने बड़ी विनय के साथ तुरन्त उत्तर दिया—'हम लोगों पर तो मुसीबत का पहाड़ ही आ टूटा है । ग़दर हो गया है । मेरा कारबार ठप होने जा रहा है । बड़ी मिहरबानी होगी अगर आप कुछ दिन ठहर जायें ।'

'कितने दिन ?' सेठ जी ने निरुपाय होकर पूछा ।

उसने बतलाया,—'गदर जल्दी दबा दिया जायगा । हमारी ताकत जबरदस्त है । बस जैसे ही ग़दर खतम हुआ कि कहीं से भी बन्दोबस्त करके आपका रुपया लौटा दिया जायगा । आप हमारे ईमान का भरोसा कर सकते हैं ।'

सेठ जी बेबस थे । अदालत अँग्रेजों की, कानून उनका और 'ग़दर' की विपद भी उन्हीं के सिर पर थी । सेठजी को हाय करके रह जाना पड़ा । उन्हें आशा थी कि न तो उनके ऋणी के भाई बन्द हिन्दुस्थान से निकाले जा सकेंगे और न उनका ईमान टूट सकेगा ।

प्रयाग में भी विद्रोह हुआ और दबा दिया गया ।

वही एंग्लो इण्डियन दूकानदार फौजी अदालत का न्यायाधीश बनाया गया । सेठ जी पकड़े गये । उन पर विद्रोहियों की सहायता करने का आरोप था । उस न्यायाधीश के सामने लाये गये । एंग्लो-इण्डियन कर्ज़दार उन्हें पहिचानता था । परन्तु जाब्ते की कार्यवाई के लिये प्रश्नोत्तर हुये—

'तुम्हारा नाम ?'

सेठजी ने गिड़गिड़ा कर नाम बतलाते हुये कहा, 'हुजूर मुझे अच्छी तरह जानते हैं। आपने मुझसे ऋण भी लिया था। आपने कहा था कि—'

न्यायाधीश ने तुरन्त टोका—'बको मत। जानते हो तुम्हारे ऊपर ग़दर करने का जुर्म है और मुझे फांसी देने का अख़्तियार है।'

सेठजी सन्न। पसीने में तर। कलेजा धड़कने लगा।

ग़दर के उस युग में गवाही-साखी और छानबीन की अटक नहीं पड़ती थी।

न्यायाधीश ने सेठजी को फांसी दे दी।

उसका ईमान टूटा हो या न टूटा हो, ऋण साफ हो गया! उसने अपने कई साहूकारों से इसी प्रकार निष्कृति पाई थी।

यह घटना तथ्य पर आधारित है। तत्कालीन प्रधान सेनापति लार्ड क्लाईव ने लन्दन टाइम्स के विशेष सम्वाददाता सर डब्ल्यू० एच० रसैल को सुनाई थी। 'टाइम्स' का सम्पादक उस समय जॉन डलेन था। रसैल ने सम्पादक को अपने एक निजी पत्र में लार्ड क्लाईव की सुनाई हुई यह घटना लिख भेजी थी। सावरकर की पुस्तक The Indian war of Independence के पृष्ठ ५१३ पर उद्धृत है।

गुप्त सभा

पौ फट रही थी। तालाब छोटा सा ही था। लहरें रंग-बिरंगी पौ के लिये पांवड़े सी बिछा रही थीं-प्रसन्नता में बलखाती हुई सीं। खिलते हुये कमल उन लहरों का साथ दे रहे थे। सिर पर छोटी सी डलिया रक्खे अधेड़ अवस्था का एक पुरुष नंगे पैर तालाब के किनारे आ गया। गुनगुनाता आ रहा था। डलिया एक ओर रखकर खुले मन से गाने लगा। स्वर ताल से उसे कुछ बहुत मतलब न था, परन्तु गा रहा था मस्ती के साथ।

सूर मदरता जियरे का, धन का दरदानी दान।
मर्द भँवरा लाज के डरिये, कुल में आवे हान।
सूरमा पांचौ भलेजी, कादर जोड़िये पचास,
आन परे सिर आपना, सूरमा छोड़ परायन आन।
सूर मदरता जियरे का, धन का दरदानी दान।*

किरणें छिटक पड़ीं। तालाब से कुछ दूर खेत थे। गेहूं की बालें झूम रही थीं। थोड़ी सी दूरी पर इखरे बिखरे झोंपड़े थे और कोस आध कोस की दूरी पर दिखलाई पड़ने वाले छोटे बड़े भवनों की गुन्जान बड़ी बस्ती। यह पटना शहर था।

वह डलिया वाला ऊपर उठती हुई किरणों के साथ तालाब में डलिया लेकर और मुँदे, अधमुँदे और खिले हुये कमलों से डलिया भर कर तालाब के बाहर निकल आया। फिर उसी गीत को गुन-गुनाता हुआ शहर की ओर चल दिया।

पटना की गलियों और सड़कों में चहल-पहल हो उठी थी। यह सौ बरस पहले का—सन् १८५७ का—पटना था। डलिया में कमल

---

* साप्ताहिक हिन्दुस्तान के क्रांति शताब्दि विशेषांक से।

के फूलों को अध-फटे मैले कपड़े से ढांके हुये वह एक सड़क पर चला जा रहा था। सड़क पर आने जाने वाले लोग मुस्करा मुस्कराकर फटे कपड़े में से झांकते हुये फूलों को देखते जाते थे दिन चढ़ आया था।

एक दिशा से पालकी में सवार पटना का कमिश्नर आ रहा था। नाम उसका टेलर था। साथ में वर्दी पहने दो घुड़सवार थे।

कमिश्नर टेलर की सवारी के आंख में पड़ते ही सड़क पर चलने वालों की मुस्कानें सिकुड़ गईं और वे लोग मार्ग देने के लिये इधर-उधर हो गये। किसी ने सिर फेर लिया। जो सामने पड़ गया उसने बेरुखी से हाथ उठा कर सलाम किया और चल दिया जैसे वह कमिश्नर को देखना ही न चाहता हो! दुकानदार कुछ बेबस से सलाम झुका रहे थे।

कमलों की डलिया वाला कमिश्नर की पालकी के पास जाकर ठिठका। कमिश्नर ने डलिया पर और उस पर निगाह डाली। डलिया वाला सिर नीचा किये था। और आँखें कभी-कभी ऊपर उठा देता था। एक ओर बग़ल में कुतुब फ़रोश–पुस्तक विक्रेता–पीरअली की दूकान थी। दूकान के द्वार के ऊपर एक बड़ी पट्टी पर हिन्दी उर्दू अक्षरों में लिखा था–'किताब घर–पीरअली लखनऊ वाले। व्यौहार नक़द। इस हाथ दे, उस हाथ ले।'

कमिश्नर ने पालकी रोक ली। पालकी ढोने वालों की दम फूल रही थी क्योंकि कमिश्नर मोटा-तगड़ा आदमी था। ढोने वालों ने पालकी के डांड़े टेकों पर रोप लिये।

मोटे स्वर में कमिश्नर ने डलिया वाले को टोका,–

'अबे ओ।'

एक क्षण के लिये कमल वाले की आंखें बिगड़ीं। फिर उसका चेहरा जैसे भय के दवाब में पड़ गया हो। दायें हाथ से डलिया साधे हुये उसने बायें से अधूरा अधकचरा सलाम किया और पालकी के निकट आ खड़ा हुआ।

'हजूर', डलिया वाला बोला ।

'कितने में बेचेगा ये फूल ?'

'मन्दिर लिये जा रहा हूं हजूर ।'

'क्या मिलेगा वहाँ ?'

'दो आने ।'

'हम तुमको चार आने देगा । रख दे पालकी में ।'

'नहीं बेचूँगा, फूल मन्दिर के लिये हैं ।'

'बेवकूफ ! गधा !!' कमिश्नर टेलर उबल पड़ा ।

पुस्तक विक्रेता पीरअली बाहर आ गया । कमिश्नर को चलतू ढँग का सलाम देकर डलिया वाले से बोला,—'जा जा साहब को गुस्सा आ जायगा ।'

पीरअली के स्वर में जितनी तेजी थी उतनी चेहरे पर न थी । उसने डलिया वाले को आँखों से सहानुभूति सूचक संकेत किया—चले जाओ ।

डलिया वाला मुँह बिगाड़े चला गया । उसके पीठ फेरते ही कमिश्नर के मुँह से फिर गाली निकली, परन्तु पीरअली ने नहीं सुन पाई ।

पीरअली कमिश्नर के निकट आया—

'हुजूर ?'

'हम तुम्हारी दूकान पर कुछ किताबें देखने आया है ।'

'भीतर पधारें ।'

पालकी नीचे रख दी गई । कमिश्नर पीरअली के साथ दूकान के भीतर चला गया । दूकान में पुस्तकें खुली अलमारियों में रखी थीं । अधिकाँश हस्तलिखित थीं । कुछ छपी हुई भी । ये अंग्रेजी की थीं । कलकत्ता और बम्बई से निकलने वाले दो समाचार पत्र एक मेज पर रखे थे और कलकत्ते से निकलने वाला एक हिन्दी उर्दू का भी ।

कमिश्नर इधर उधर आंख घुमाकर हिन्दू-उर्दू वाले पत्र को देखने लगा। नाम उसका 'हरकारा' था। उसने उठाकर उल्टा-पल्टा और बोला,—'यह क्या! चर्बी के कारतूस!! आज से तीन बरस पहले ज़रूर अमल में लाये गये, लेकिन ग़लती से। इन दिनों क्यों इसका ज़िकर किया जाता है?'

कुछ क्षण उसने 'हरकारा' का वह अंक पढ़ा।

गरम हो गया—

'यह खबर का काग़ज़ बेईमान है; कहता है कि सिपाहियों को अब भी शक़ है!'

पीरअली ने विनय के स्वर में कहा,—'हुजूर वह सिपाहियों को शक़ की ही बात तो कहता है।'

कमिश्नर यों ही सन्तुष्ट होने वाला न था। बोला,—'मुन्शी पीरअली, खबर का कागज बदमाश है। कहता है धरम पर चोट पहुँची है और बोलता है कि हम सरकार के कान तक खबर भेजने के लिये ही लिख रहा है! छापेखाने का कानून जल्दी बनना चाहिये वरना अखबार का बदमाशी बन्द नहीं होगा।'

'ये अंग्रेजी अखबार कहते हैं कि कलकत्ते के साहब लोग नहीं चाहते कि छापेखाने का कानून बने!'

'कलकत्ते का बहुत सा साहब लोग बेवकूफ है। वैल, कोई नया किताब?'

'हाँ हजूर, सिन्ध-विजय पर लिखी जनरल नेपियर की किताब हाल में आई है। यह वह जनरल साहब हैं जिन्होंने सिन्ध को फतह किया था।'

पीरअली अलमारी में से पुस्तक निकाल लाया। पुस्तक में एक स्थान पर याद दिलाने के लिये चिट लगी थी जो किसी अँग्रेजी जानने वाले पाठक ने लगाई होगी। टेलर ने चिट वाले पृष्ठ को खोला और पढ़ते ही हँस पड़ा। उसमें लिखा था—

'हमारे साम्राज्य के पहिये ने सिन्ध को कुचल डालने की तैयारी की। वह हम अंग्रेजों की एक खूबसूरत बदमाशी थी !'

टेलर बोला,—'जनरल नेपियर साफ़ बहादुर आदमी था।' फिर उसने तुरन्त गम्भीर होकर कहा,—'सिन्ध के लोगों को फायदा पहुँचाने के लिये हमने सिन्ध की फतह की। हम लोग हर जगह ऐसा ही करता है।'

सड़क पर यकायक शोरगुल बढ़ा। पीरअली ने द्वार से झाँककर देखा और कमिश्नर को बतलाया,—'जगदीशपुर के राजा कुँवरसिंह साहब आ रहे हैं यहां के लोग उन्हें जानते हैं। लोग सवारी देखकर खुश हो रहे हैं।'

'ओह! वह राजा नहीं है। उस पर बहुत कर्जा और सरकारी मालगुजारी है। खैर, वह वफादार है। वैल, जनरल नेपियर वाला कितना किताब तुम्हारी दूकान में है ?'

'एक ही मँगाई हुजूर। उसे हमारे कुछ लोग यहां आकर तो पढ़ गये पर मोल अभी तक किसी ने नहीं ली है।'

'इसे हम लेगा। और जिल्दें मत मगवाना। हमारा मर्ज़ी है।'

'जो हुकुम हुजूर का।'

'दाम बंगले से मिल जायगा,' कहकर कमिश्नर पुस्तक लेकर चला गया।

कमिश्नर के चले जाने पर जगदीशपुर के राजा कुँवरसिंह का हाथी पीरअली की दूकान के सामने रुक गया। वह उतरे ही थे कि पीरअली उनके पास हर्षमग्न आया और भीतर के कमरे में लिवा ले गया।

स्वागत शिष्टाचार के उपरान्त पीरअली ने एक अंग्रेजी समाचार पत्र का हवाला देते हुये कहा,—'राजा साहब, इसमें छपा है कि १८५७ की २३ जून को हमें प्लासी की लड़ाई की शताब्दि मनानी चाहिये जब सौ बरस पहले हमें हिन्दुस्थान का राज मिला। अगले

बरस तक जब हम अपनी शताब्दि बनायेंगे तब इस देश के करीब-करीब सब लोग ईसाई हो जाने का समारोह करेंगे।' वाक्य के अन्त पर आते आते पीरअली क्षोभ की उसांसें भरने लगा।

कुँवरसिंह अस्सी बरस के होंगे। ऊँचे पूरे, चौड़े तगड़े। आंखें बड़ी बड़ी, नाक सीधी, चेहरा ज़रा लम्बा जो शायद रोबदार लम्बी दाढ़ी के कारण लम्बा जान पड़ता था। लगते थे जैसे नेतृत्व इनका जन्म-सिद्ध अधिकार हो!

मुस्कराते हुये बोले,—'मुन्शी जी, इन लोगों ने हिन्दू मुसलमानों के धर्म बिगाड़ने में कोई कसर नहीं लगाई। सीधे तिरछे सब उपायों से हम लोगों के गिराने की कोशिश होती चली जा रही है। सेना में देख लीजिये—सिपाही अपना धर्म ईमान छोड़ दे तो हवलदार बना दिया जाता है और हवलदार छोड़ दे तो सूबेदार मेजर कर दिया जाता है। इधर किसान और कारीगर भूखों मरने लगे हैं। किसानों की जमीनें छीन कर गोरे नील की खेती करते हैं; उन्हें मारते पीटते और बरबाद करते हैं। धुनियें, जुलाहे, बुनकर, धुनकर, सुनार, कुम्हार सभी बेकार होते चले जा रहे हैं।'

कुँवरसिंह की मुस्कान चली गई थी। उसने कराहते हुये से कहा,—'अब तो नहीं सहा जाता।'

'आगरा अवध का सारा प्रदेश अँग्रेज़ों ने हड़प लिया है। लखनऊ रो रही है, झाँसी बिलख रही है।'

'राजा साहब, अकेले अवध के पैंतीस हज़ार ज़मीदार उजाड़ दिये गये हैं! मालगुज़ारी इतनी बढ़ा दी गई है कि वहाँ की जनता ज़ुल्म के मारे पिस रही है!! बड़े बड़े घरानों तक के नर नारी लखनऊ में पेट भरने के लिये भीख मांग उठे हैं।'

हम लोग आगे उठकर खड़े न हो सकें, हाथ पैर न हिला सकें इसके लिये कम्पनी सरकार हथियारों की रोक का क़ानून बनाने वाली है।'

'यह लीजिये कलकत्ते से निकलने वाले हरकारा अखबार में यह सब छपा है।'

कुँवरसिंह ने समाचार पत्र पढ़ा। बोले,—'हम लोग यों ही सिर नहीं झुका देंगे। जब तक दम में दम है छाती फुलाकर संघर्ष करेंगे। हम मर जायेंगे तब आने वाली पीढ़ियाँ भिड़ती रहेंगी। हो सकता है एक दो वर्ष में ही हम स्वतन्त्र हो जायँ। छोटे से छोटे लोगों से लेकर बड़े बड़ों तक, सेना के साधारण सिपाही से लेकर सूबेदार मेजर तक इस हवा से लहरा उठे हैं। मौक़े की बाट देख रहे हैं।'

पीरअली ने इधर उधर देखकर कहा,—'बिठूर के नाना साहब धोंडूपन्त, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, लखनऊ की बेगम हज़रत महल और दिल्ली के बादशाह बहादुर शाह वग़ैरह की चिट्ठियाँ आई हैं—सब में मौक़े की बाट देखने की बात है। बारूद बिछ गई है। चिनगारी लगने भर की देर है। अपने यहाँ वहाबी जमात के लोग काफ़ी तैयारी कर चुके हैं।'

'तो आज रात वहाबी मुखियों की और काशी वाले पण्डितों की बैठक हो जाय।'

'ज़रूर हो जायगी। कमल का फूल और रोटी जगह-जगह घुमा कर अपना सन्देसा फैलायेंगे, यह भी आज तै हो जायगा। जो चिट्ठियां बाहर से आई हैं उनमें यही सुझाया गया है।'

'मालुम है।'

(२)

मन्दिरों में मसजिदों में कमल के फूल पहुँचे। डलियों में कमल के फूल आये और मन्दिरों-मसजिदों से लेकर गांव गांव और सेना की छावनी छावनी में घुमाये गये। रोटी भी घुमाई गई। लोगों के कानों में फूँका जाता था, 'हम अपने धर्म ईमान के लिये प्राणों की होड़ लगा देंगे।' कमल भारत की संस्कृति का चिन्ह था और रोटी—रोटी जनता के पेट का प्रश्न।

और, एक दिन वह चिनगारी बारूद पर समय के पहले ही पड़ गई ! जगह-जगह विस्फोट हो गये !

पटना में भी हुआ। कुछ अँग्रेज़ हंगामें में मारे गये। पीरअली पर सन्देह पहले से ही था। पकड़ा गया।

जेल में उसकी बड़ी दुर्गति की गई। फिर फांसी पर लटकने के लिये भेजा गया। जब वह फांसी के तख़्ते पर चढ़ा उसके कई अंगों से ख़ून निकल रहा था। कमिश्नर टेलर वहाँ था।

बोला,–'पीरअली, अगर तुम अपनी गुप्त सभा के साथियों का नाम बतला दो तो अब भी ख़ैर है, तुम्हारी जान बख़्श दी जायगी।'

'टेलर साहब',–पीरअली ने गला साफ़ करके कहा,–'कोई समय ऐसा होता है जब जिन्दगी मौत से ज़्यादा कीमती है और कोई ऐसा होता है जब मौत ज़िन्दगी से कहीं ज़्यादा अनमोल हो जाती है। यह घड़ी इसी तरह की है।'

'तो तैयार हो जाओ मरने के लिये। कुछ कहना है ?' टेलर बोला।

पीरअली ने आकाश की ओर सिर उठाकर कहा,–'केवल इतना कि मेरे ख़ून की एक एक बूंद से हज़ार हज़ार शहीद पैदा होंगे।'

और पीरअली फांसी के उस तख़्ते पर शहीद हो गया। फूलों की डलिया वाला वह व्यक्ति कुछ दूरी पर खड़ा था। उसकी डलिया हिल गई और कमल के फूल धरती पर बिखर गये।

पीरअली की एक एक बूंद से कितने कितने शहीद हुये, गिनती किसने कर पाई ?

वे दिन लद गये मैम सा'ब !

(१)

मई का महीना लग चुका था। दिन भर लू चलती रही। चौथे पहर मन्द पड़ गई, परन्तु पसीना बहाने वाली गरमी कुछ अधिक आँसने लगी। कानपुर के कपड़ा बाज़ार में दूकानें अधखुली सी थीं। दूकान में कोई पंखे से, कोई अपने कपड़े से गरमी का आतङ्क कम करने का उपाय कर रहा था। ग्राहकों का बाज़ार में आना शुरू हो गया था।

एक दूकान के सामने एक छोटी सी घोड़ागाड़ी आकर खड़ी हुई। एक अँग्रेज महिला उतर कर दूकान में आई। दूकानदार ने महिला को बैठने के लिये मूड़ा दिया। तब दूकानों में गद्देदार कुर्सियां नहीं पहुँची थीं।

'मैम सा'ब, क्या हुकुम है ?' दूकानदार ने बिना नम्रता के शिष्टाचार के ढँग पर पूछा।

'ओह ! बड़ा गर्मी है, जान निकला जा रहा है हमारा !'

'आप ज़रा ठण्डे में बाज़ार आतीं तो अच्छा रहता। कौन-सा कपड़ा चाहिये ?'

'पहले हमको पंखा करो तब बात करेगा।'

'लीजिये पंखा।' दूकानदार ने पंखा बढ़ाया।

मैम साहब की गरमी कुछ तेज हुई,—'वल हम यहाँ अपने हाथ से तुम्हारे पंखे का हवा खाने वास्ते नहीं आया है। पंखा खुद करो या नौकर से कराओ, तब हम बतलायगा हमको क्या खरीदना है।'

नौकर जहाँ खड़ा था वहां से कुछ और दूर हटकर कपड़े की गठरियाँ उठाने-धरने लगा।

'हम लोगों ने वह रिवाज बन्द कर दिया है। न तो मैं पंखा झलूँगा और न हमारा नौकर', दूकानदार ने खिसियाये स्वर में कहा। उसे पसीना आ रहा था। मैम साहब तो तर ही हो गई थीं।

'गुस्ताख! नालायक!!' मैम साहब मूड़ा छोड़ कर खड़ी हो गई,—'बद्‌तमीज़ काला आदमी! किसी दिन तुमको जेलखाने भेजा जायगा।' वह दूकान के द्वार पर पहुँच गई।

दूकानदार भी ताव पर आ चुका था। बोला,—'जाओ, जाओ मैम सा'ब। वे दिन लद गये जब हम कानपुर वाले तुम लोगों की अब्बे-तब्बे सुन लेते थे। बहुत जल्दी हिन्दुस्थान के बाज़ारों से तुम सब निकाल दिये जाओगे।'

मैम गालियां देतीं हुई चली गई। दूकान वालों का ताव हँसी में पलट गया।

(२)

मैम का पति कानपुर की एक गोरी पल्टन में सार्जेंट था। उसके आते ही मैम ने बाजार में बीती का रोना रोया। सार्जेन्ट ने बन्दूक़ से आधे बाजार को उड़ा देने की बात फुफकारी। परन्तु सेना के नियम अनुशासन की बाधाओं का स्मरण करके बदला लेने की वान्छा किसी अवसर की ताक में रख दी।

सन्ध्या के समय सार्जेन्ट ने अपने अभ्यास के अनुसार शराब पी और मन की एक क्या कई कुढ़नों के डुबोने के लिये और भी ढाल ली। भरी बन्दूक़ लेकर निकल पड़ा। कहीं जाना चाहता था कहीं जा पहुँचा। पैर लड़खड़ा रहे थे, परन्तु उसे अँधेरे में भी कुछ मनमाना दिखलाई पड़ रहा था।

एक हिन्दुस्थानी सिपाही सामने से आ रहा था। जब वह निकट आया सार्जेन्ट को लड़खड़ाते देखकर बोला,—'साहब, सँभलिये! सँभलिये!!'

'साहब' ने न जानें क्या देखा और सुना। कन्धे से बन्दूक़ लगाई और दाग़ दी। कन्धे हिल रहे थे, हाथ डिग रहा था। गोली छूटी, परन्तु वह सिपाही बच गया। 'साहब' पटपटा कर नीचे जा गिरे। सिपाही ने पहिचान लिया और उच्चाधिकारी से तुरन्त फ़रियाद की।

कुछ गोरे सिपाही सार्जेन्ट को उठा ले आये। सेना के बड़े अफ़सरों ने क़ायदे के अनुसार कोर्टमार्शल-फ़ौजी अदालत बिठलाई।

जनरल व्हीलर इस अदालत का प्रधान था।

फ़रियादी ने आरोप का ब्योरा देते हुये अन्त में कहा,-'इसने मेरे ऊपर बिना किसी कसूर के गोली चलाई।'

सार्जेन्ट की सफ़ाई का सार था,-'मैं नशे में था। मुझे नहीं मालूम कि क्या से क्या हुआ।'

सैनिक न्यायालय के न्यायाधीशों ने आपस में सलाह की और फ़ैसला दिया—

'सार्जेन्ट से कोई अपराध नहीं हुआ। भविष्य के लिये उसे आदेश दिया जाता है कि इतनी शराब न पिया करे।'

सार्जेन्ट छोड़ दिया गया। गोरे सैनिक प्रसन्न थे। परन्तु हिन्दुस्थानी सैनिकों के हृदयों में आग लग गई। उनमें से कई तुरन्त कुछ कर डालने के लिये फड़क उठे। अधिक शान्त प्रकृति के साथियों ने नियुक्त तारीख़ तक के लिये ठहरे रहने की बात उन सबके मन पर बिठला दी—३१ मई की प्रतीक्षा करने की बात। मेरठ में दस मई के दिन—नियुक्त तारीख़ के पहले ही विस्फोट हो गया था। समाचार आ चुका था। कानपूर के हिन्दुस्थानी सिपाही उस दिन की बाट उत्सुकता के साथ देखने लगे। बस्ती के लोग, बाज़ार के दूकानदार भी टकटकी लगाये थे।

घायल सिपाही

वह बढ़ई था। गरीब था। रानी लक्ष्मीबाई का सिपाई था। जनरल रोज़ ने झांसी को घेर लिया, रानी लक्ष्मीबाई और उनके सिपाहियों ने जी तोड़ कर युद्ध किया। झाँसी के बहुत से सिपाही गये अनेक घायल हुये। आधी रात के लगभग रानी को थोड़े से अनुयायियों के साथ झांसी छोड़नी पड़ी जो पीछे रह गये उनमें से कुछ लड़ाई में मारे गये, कुछ आहत होकर मौत की घड़ियां गिनने लगे। बढ़ई सिपाही इन्हीं में से एक था।

झाँसी में जनरल रोज़ की सेना विजन—क़त्लेआम कर रही थी। स्त्रियां अपने पुरुषों को बचाने के लिये सामने आ आ जाती थीं और गोली खा खा कर गिर-गिर जाती थीं। जिनको वे बचाना चाहती थीं वे भी नहीं बच पा रहे थे। वध के लिये तत्पर जनरल रोज़ के सैनिक बदला लेने की भावना में पागल थे। पागलों जैसे शहर की गलियों से लेकर नगर-कोट तक घूम रहे थे। उनकी बन्दूकें उतावली थीं—आड़ी, तिरछी, ऊँचे उठी हुई, नीचे घूमी हुई, जैसे कार्तिक के मेघ और बवण्डर ने ज्वार के खेत में हलचल मचादी हो खून के फौहारे, चीत्कारों और कराहों के गगनभेदी नाद।

घायल बढ़ई सिपाही नगर-कोट के नीचे एक बड़ी मुहरी के पास ढेर सा पड़ा हुआ था। पास ही छोटे-बड़े पत्थरों के बीच में उसकी भरी हुई बन्दूक लेटी हुई थी, परन्तु सिपाही के हाथ में इतना बल न था कि वह उसे उठाकर अपने कष्ट को समाप्त कर लेता। कुछ दूरी पर जो कुछ हो रहा था वह उसकी कल्पना मात्र कर सकता था, साफ़-साफ़ नहीं दिखलाई पड़ रहा था दुश्मन की एक गोली मेरे सिर या सीने पर पड़ जाय तो कैसा अच्छा हो, उस घायल सिपाही

की इच्छा थी। दुश्मन शायद उसको मरा हुआ समझकर उससे घृणा कर रहे थे, कोई पास न आ रहा था। घायल के निकट ही कोट की दीवार के नीचे से बहने वाली एक नाली थी—गन्दी नाली। घायल प्यासा था, परन्तु वह नाली सूखी थी।

एक गली में से यकायक एक झांसी निवासी भागता हुआ घायल सिपाही की दिशा में आया, पीछे-पीछे एक स्त्री। दोनों मानों यमराज के वज्रपाश से बचने के लिये हड़बड़ाते हुये भाग रहे हों।

उन दोनों के पीछे बन्दूक़ ताने हुये एक गोरा भी उसी गली में से भागता हुआ आया! वे दोनों स्त्री-पुरुष ऐसे कतराते हुये भाग रहे थे कि गोरा निशाना नहीं बाँध पा रहा था। परन्तु वे दोनों जानते थे कि यमराज के लक्ष्य से बच नहीं सकेंगे। पुरुष किंकर्तव्यविमूढ़ ठिठक गया, थर्राता हुआ। आंखें मानों फट गई हों। स्त्री उसके सामने आ गई। गोरा हाँप रहा था, बन्दूक़ कन्धे पर आसानी के साथ नहीं जम पा रही थी। गोरा जानता था कि क्षण दो क्षण का विलम्ब भले ही हो जाय, दोनों में से एक भी नहीं बच पावेगा—स्त्री बच जाय तो अच्छा है ज़रा बग़ल काट कर निशाना बाँधूँ, नहीं बच पाती है तो, ख़ैर। अँग्रेज़ों के बाल-बच्चों की हत्या में इन सब का हाथ रहा है, तो मरें।

परन्तु गोरे ने बन्दूक़ का चलाना तो क्या निशाना भी नहीं बाँध पाया था कि आवाज हुई 'धाड़।' उधर घायल के पास बन्दूक़ की नाल से निकले हुये धुयें ने अपना आकार भी नहीं बना पाया था कि गोरा धम्म से जा गिरा।

न मालूम कहां से घायल सिपाही के हाथ में इतना बल आ गया था कि उसने निकट लेटी हुई बन्दूक उठा ली, और कन्धे से जोड़कर गोरे पर दाग़ दी।

वह उबोरा नामक ग्राम का बढ़ई था, परन्तु था लक्ष्मीबाई का सिपाही।

वे दोनों स्त्री-पुरुष कुछ समझे नहीं, वहाँ से दूसरी दिशा में भाग कर कहीं जा छिपे। यमराज का कोई दूसरा दूत न आ धमके कहीं से !

उस घायल सिपाही को अपने भीतर कुछ और शक्ति का अनुभव हुआ। वह रेंगता सरकता हुआ मुहरी पर पहुँचा और धीरे-धीरे उसी मार्ग से बाहर हो गया।

कई दिन के उपरान्त वह अपने गांव उबोरा में पहुँच गया। चोट अच्छी हो गई और वह कई वर्ष तक जीवित रहा।

चोट अपना चिन्ह और परिणाम छोड़ गई परन्तु वह उसको खटका कभी नहीं। वह उस चोट को लगभग भूल गया।

परन्तु क्या वह उस आल्हाद को कभी भूला जो उसको उन दो स्त्री-पुरुष को बचाने से मिला था ?

नाना साहब और कानपूर की वह दुर्घटना

(१)

मेरठ की छावनी में विप्लव का विस्फोट दस मई सन् १८५७ के दिन होते ही जगह-जगह आग भड़क गई। अँग्रेज़ों का बर्ताव जनता और जनता में से भर्ती किये गये सिपाहियों को असह्य हो उठा था। क्रोध के मारे वे पागल हो गये और उन्होंने कई स्थानों पर अँग्रेज़ नर-नारियों का वध कर डाला, परन्तु अनेक स्थानों पर इन क्रान्तिकारी सिपाहियों ने क़ैद किये गये अँग्रेज़ नर-नारियों को बिलकुल नहीं सताया बल्कि उन्हें सुरक्षा के स्थानों पर पहुँचने की सुविधायें भी दीं, जैसे आजमगढ़, फैज़ाबाद इत्यादि में।

इन सबके समाचार बम्बई, कलकत्ता इत्यादि उन नगरों में पहुँचे जहाँ अंग्रेज़ काफ़ी संख्या में थे और जहां सुरक्षा के पूरे साधन उनके हाथ में थे। अँग्रेज़ उन समाचारों को सुनकर सिपाहियों से भी अधिक पागल हो गये। हमारे आधीन काले आदमियों की यह हिम्मत! जंगली जानवरों से भी अधिक ख़ूंख़ार और गये बीते!! इनके साथ बर्ताव उन जंगली जानवरों की अपेक्षा अधिक कठोर और निर्दयता का किया जायगा। इस बात का उन अँग्रेज़ों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा कि ऐसे भी अनेक सिपाही-दल हैं जिन्होंने अँग्रेज नर-नारियों और बालकों की रक्षा अपनी जान हथेली पर रख कर की थी।

लॉर्ड कैनिंग तब ईस्ट इण्डिया कम्पनी का गवर्नर जनरल था। वह कुछ धीरज और सन्तुलन वाला व्यक्ति था, परन्तु चारों ओर से घेरे हुये अँग्रेज़ों और नीम अँग्रेज़ों के उलहनों, व्यङ्गों और शिकायतों का उस पर भी प्रभाव पड़ा।

क्या कर डालना चाहिये इस पर तुरन्त विचार करने के लिये कलकत्ते में उसकी काउन्सिल की बैठक हुई।

एक बोला,—'ज़रा भी रियायत की गई तो हमारा राज हिन्दुस्थान से बिलकुल उठ जायगा।'

दूसरे ने कहा,—'जो कुछ यहां कमाया-जमाया है सब धूल में मिल जायगा।

'दुनियां के दूसरे उपनिवेश भी हाथ से निकल जायेंगे।'

'हमारा देश इङ्गलैंड भूखों मरने लगेगा।'

प्लासी के युद्ध (सन् १७५७) के बाद से अँग्रेज़ों की आर्थिक और व्यापारिक नीति ऐसी रही थी कि हिन्दुस्थान का निजी जहाजी व्यवसाय नष्ट हो गया, शिल्प और शिल्पी नष्ट प्रायः हो गये, किसानों से लगान इतना वसूल किया जाने लगा कि किसान भूखों मरने लगे थे। अँग्रेज़ अनेक भूखण्डों के जमींदार हो गये थे,—नील, चाय इत्यादि की खेती उन्हीं के हाथों में पहुँच गई थी, और वे किसान-मज़दूरों के साथ बहुत बर्बर बर्ताव करने लगे थे। इसका परिणाम हुआ इङ्गलैंड का धनधान्य से भरा पूरा हो जाना और वहां अनेक कल कारखानों का जन्म तथा भरणपोषण। इधर इसका फल हुआ शिल्पियों और किसानों का लगातार हीन और क्षीण होते चले जाना। काउन्सिल के सदस्यों को केवल अपनी ही पड़ी थी। उन्हें अधिक बहस नहीं करनी पड़ी।

लॉर्ड कैनिंग ने तै किया,—'जहाँ के भी सिपाही बग़ावत करें उन्हें तुरन्त कड़ा दण्ड दिया जाना चाहिये।'

काउन्सिल के सदस्य ने समर्थन किया,—'बिलकुल ठीक है। उन्हें तोप के मुँह से बाँधकर उड़ा देना चाहिये। आगरे के सिपाहियों ने बग़ावत की ठानी तो उन्हें केवल बरख़ास्तगी की सज़ा दी गई! वे बाहर निकल आये और उन्होंने मथुरा के आसपास आग लगा डाली। यदि आगरे में ही वे सब बाग़ी ख़तम कर दिये जाते तो हमारी हकूमत को बाल बराबर भी नहीं हिलाया जा सकता था।'

'बाग़ियों के लिये क्या किया जाय यह तो तै हो ही गया, बाग़ियों को जो कोई रसद-सामान दे, यहां तक कि उनसे ज़रा अच्छी तरह भी बोले तो उसको क्या दण्ड दिया जाय इसे समस्या का रूप देकर खड़ा किया गया।

एक ने कहा,—'अँग्रेजी हकूमत का सोलह आने रोब बिठलाये रखने का एकमात्र उपाय यही है कि बाग़ियों के साथ किसी तरह की भी सहानुभूति रखने वालों को उतनी ही कड़ी सज़ा दी जाय जितनी बाग़ियों को, क्योंकि यही तो वह बांस है जिसकी बांसुरी ये बाग़ी सिपाही बजाते फिरते हैं।'

लॉर्ड कैनिंग ने अपना निर्णय पक्का किया,—'मैं सारे फ़ौजी अफ़सरों को अधिकार देता हूं कि वे जहां जैसा ठीक समझें बग़ावत को कुचलने के लिये बदमाशों को दण्ड दें चाहे वे कोई भी हों। ये अफ़सर क़ैद की सज़ा से लेकर फांसी तक की सज़ा तुरन्त दे सकते हैं। अपील की भी मुहलत नहीं दी जायगी।'

पूरी काउन्सिल हर्षमग्न हो गई। कलकत्ते के अँग्रेजों और किरानियों में भी उस हर्ष की लहर दौड़ गई।

मातहत अँग्रेज अफ़सरों के पास दूर दूर तक की छावनियों में लॉर्ड कैनिंग का यह आदेश हवा की तेजी के साथ पहुँचा दिया गया। प्रत्येक गोरे अफ़सर क्या गोरे सिपाही तक की भावना बन गई कि वह जो चाहे कर सकता है।

(२)

कानपूर में जनरल व्हीलर, नाना धोंडूपन्त और तात्या टोपे के मुकाबले में लड़ता लड़ता थक गया था। ठण्डे देश के रहने वालों के लिये यहां के जून महीने का युद्ध कठिन और दुस्सह है, हिन्दुस्थानी तो उस लू और गरमी के पाले-पोसे ही होते हैं। यदि भारतीय के पास हथियार भी अच्छे हों तो वह अजेय है। उस समय सेना की

संख्या, अच्छे हथियार और मौसम नाना धोंडूपन्त की सेना के पक्ष में थे। व्हीलर ने सफेद झण्डा खड़ा किया। सन्धि का यह संकेत पाते ही अपनी सेना को नाना साहब ने हथियार चलाने से रोक दिया। सन्धि की शर्तें तै करने के लिये उन्होंने अपने प्रतिनिधि अजीमुल्ला को व्हीलर के पास भेजा।

एक आड़ से दोनों में सन्धि की चर्चा हुई। बातचीत के सिलसिले में व्हीलर ने कहा,–'हम अँग्रेज़ों ने तुम्हारे देश में रेल-तार, नहरों और सड़कों की तामीर की। अमन और बन्दोबस्त कायम किया, तुम लोग यह सब भूल गये!'

'यह सब होते हुये भी देश में बेहिसाब ग़रीबी छा गई और हिन्दू मुसलमानों के धर्म ईमान पर कठोर आघात किया गया!' अजीमुल्ला ने बतलाया और सन्धि की शर्तें खोलने के लिये अनुरोध किया,—'देश की आज़ादी से बढ़कर और कुछ नहीं। हम हिन्दुस्थानी भूखों मर सकते हैं, मगर गुलाम होकर नहीं रहेंगे। आप तो अपनी शर्तें पेश करिये।'

व्हीलर ने शर्तें पेश की,—'हम सबको आराम और इज्ज़त के साथ गङ्गा की राह नावों के ज़रिये इलाहाबाद भेज दिया जाय। नावों में खाने-पीने का भी इन्तजाम रहे।'

अज़ीमुल्ला ने स्वीकार कर लिया।

थोड़ी देर में लिखा पढ़ी हो गई। इस ओर से नाना साहब एवम् अजीमुल्ला के और उस ओर से जनरल व्हीलर के हस्ताक्षर सन्धि-पत्र पर हो गये। जितने अँग्रेज़ नर-नारी और बालक घेरे में थे वे सब स्वतन्त्र हो गये और इलाहाबाद जाने की तैयारी करने लगे।

नाना साहब ने तात्या टोपे को आदेश दिया,—'इन सब को इलाहाबाद पहुँचा देने के लिये तुरन्त नावें तैयार कराओ। नावों के ऊपर छाया का भी प्रबन्ध कर देना क्योंकि धूप बहुत तेज है। भोजन-पान का भी बन्दोबस्त रहे।'

तात्या ने आदेश का पालन किया। चालीस नावें अविलम्ब तैयार करवाईं। उनके ऊपर छाया का आयोजन किया, आटा घी इत्यादि भी नावों में रखवा दिया जिसमें यात्रा में भोजन की ज़रा भी तंगी न होने पावे।

(३)

इधर यात्रा के लिये यह सब प्रबन्ध हो रहा था उधर सैनिक हर्षोन्मत्त थे—उन्होंने अँग्रेजों के विरुद्ध विजय पाई थी। नाना धोंडूपन्त को राज-तिलक करने का निश्चय किया गया। बड़ी धूमधाम से राज-तिलक हुआ। बिठूर में उत्सव समारोह की लहरें फूट पड़ीं। कानपूर की प्रसिद्ध गायिका नर्तकी सुन्दरी अज़ीज़न उस समारोह में प्रमुख भाग ले रही थी। नाना साहब सिंहासन पर बैठे थे। दमकीली भड़कीली राजशी पोशाक में। सिंहासन के निकट ही नीचे तात्या टोपे, अज़ीमुल्ला इत्यादि नाना साहब के दरबारी। जयकारे लगे, फिर अज़ीज़न आनन्द विभोर होकर गाने-नाचने लगी। बढ़िया पोशाक में वह सुन्दरी अप्सरा-सी जान पड़ती थी। दरबार का प्रदर्शन देखने के लिये भारी भीड़ इकट्ठी हो गई थी। शोरगुल बहुत कम हो गया था। भीड़ मुग्ध होकर देख सुन रही थी।

जैसे अज़ीज़न के नृत्य-गान का एक क्रम समाप्त हुआ नाना साहब ने कहा,—'हमारे देश का एक भाग स्वतन्त्र हो गया है, अज़ीज़न। तुम्हें इनाम मिलेगा।'

'महाराज',—अज़ीज़न ने विनय की,—'लूँगी अवश्य लूँगी, लेकिन कुछ दिन बाद जब हमारा सारा देश फिरङ्गियों से ख़ाली हो जायगा।'

अज़ीज़न के इस कथन पर भीड़ में बिजली की लहर-सी दौड़ गई और ज़ोर के साथ शब्द निकले,—'वाह ! वाह !! अज़ीज़न क्या बात है !!!'

भीड़ में बहुत से सिपाही भी थे। ये अज़ीज़न को जानते थे।

अज़ीज़न के संगीत का दूसरा दौर शुरू होने वाला ही था कि फटे पुराने कपड़े पहिने अस्त-व्यस्त दशा में कुछ सिपाही चिल्लाते कराहते हुये घुस पड़े,–'मार डाला ! मार डाला !!'

'क्या बात है भाइयो ?' नाना ने पूछा, तात्या ने पूछा, अज़ीमुल्ला ने उनके पास जाकर प्रश्न किया। और भी कई कण्ठों ने। इनमें अज़ीज़न भी थी।

उन आने वालों ने बतलाया,–'ग़ज़ब हुआ ! ग़ज़ब ढाया गया है !! बनारस से इलाहाबाद आते हुये जनरल नील और उसके अँग्रेज़ सिपाहियों ने हज़ारों बूढ़े, जवान, स्त्री, और बच्चे क़तल कर डाले हैं ! गांव के गांव जला कर राख कर दिये हैं !!! अब वह कानपूर को पीस डालने के लिये आ रहा है। इलाहाबाद शहर के एक नीम के पेड़ पर फिरङ्गियों ने आठ सौ हिन्दुस्थानियों को फांसी देकर मार डाला है। हाय ! दूध पीते बच्चे भी नहीं छोड़े हैं इन्होंने !!'

उन लोगों से इस समाचार के ब्योरे पूछे गये। उन्होंने बतलाये। उपस्थित भीड़ के रोम रोम से अंगारे से बरसने लगे। नाना साहब ने शान्त रहने और धीरज रखने का आग्रह किया। अनेक लोगों के गले फफक रहे थे, अनेकों के नथनों से फुंकारें छूट रही थीं।

अज़ीज़न बोली,–'महाराज नाना साहब, श्रीमन्त सरकार, उन्होंने यह किया और आप इन्हें नावों में आराम से बिठला कर इलाहाबाद बिदा कर रहे हैं !'

नाना साहब ने समझाया,–'व्हीलर और उसके साथियों ने तो वे क़तल और जुल्म किये नहीं हैं ! हमें अपने कौल करार पर चलना पड़ेगा।'

अज़ीज़न की नाक से फुफकार निकली। उसका साथ भीड़ के अनेक कण्ठों की हुँकार ने दिया।

नाना साहब ने जारी रक्खा,–'हमारी तरफ़ से जनरल व्हीलर को लिख कर दिया गया है कि उन सबको सहीसलामत इलाहाबाद

पहुँचा दिया जायगा।' फिर भीड़ का बहुत कड़ा रुख परख कर बोले, 'लेकिन तुम सब लोगों का कहना भी ठीक है कि यदि ये इलाहाबाद पहुँच गये तो हमें बरबाद करने में कसर नहीं लगायेंगे। इसलिये मैं इन्हें यहीं क़ैद में रक्खूंगा।'

भीड़ कुछ सन्तुष्ट दिखलाई पड़ी। सुन्दरी अजीज़ान ने कुछ नहीं कहा, परन्तु आकृति उसकी ऐसी लग रही थी जैसे यमराज की बहिन हो!

नाना साहब को विश्वास हो गया कि क्षुब्ध होते हुये भी उन सबने बात मान ली।

(४)

नाना साहब बिठूर में रह गये। उन अँग्रेज़ नर-नारियों को क़ैद में जल्दी नहीं किया जा सका। तात्या टोपे और अजीमुल्ला को अपने और नाना के लिखे वचन की प्रतिष्ठा का स्मरण पल-पल पर हो रहा था। नाना साहब ने व्हीलर और उसके साथियों को क़ैद कर लेने की आज्ञा स्पष्ट दृढ़ता के साथ नहीं दी थी और न यह बतला पाया था कि कहां क़ैद में रक्खें।

व्हीलर और अन्य अँग्रेज़ नर-नारी तथा बालक छायादार नावों में अपने सामान के साथ बैठकर सती चौरा घाट से इलाहाबाद की ओर जाने वाले ही थे कि किनारे पर कुछ सिपाही आ गये। अजीज़ान घोड़े पर सवार उनके साथ थी।

तात्या और अजीमुल्ला बिठूर से चल पड़े थे, परन्तु सती चौरा-घाट पर नहीं पहुँच पाये थे।

सिपाहियों ने नावों में बैठे उन अँग्रेजों पर गोली वर्षा की। बहुत से मारे गये। थोड़े से ही बच पाये।

तात्या और अजीमुल्ला को समाचार मिला। तुरन्त नाना साहब को सूचना दी गई। नाना साहब दौड़े हुये आये। उन्हें इस घटना पर बहुत दुख हुआ।

जितने अँग्रेज़ बाल-बच्चे बचे थे नाना ने उन्हें अपनी कानपूर स्थित सौदा कोठी में भिजवा दिया। बच्चों के लिये दूध का प्रबन्ध किया और स्त्री-पुरुषों के लिये बकरे के गोश्त का भी! महाराष्ट्र ब्राह्मण ने इन लोगों के लिये मान्स भोजन का बन्दोबस्त किया !!

कानपूर के सती चौरा घाट जनवध का समाचार चारों ओर फैला। अँग्रेजों की हिन्सा दस गुनी हो गई। 'नाना ने क़तल कराये !' 'नाना ने सितम ढाये हैं !!' सब जगह के अँग्रेज़ चिल्लाने लगे।

बम्बई से निकलने वाले एक पत्र (टाइम्स ऑव इण्डिया ता० २०-७-१८५७) ने लिखा कि 'नाना को पकड़ कर उसके गले में एक तख़्ती इस इबारत की लिखी टांगी जाय—यही है बिठूर और कानपूर का वह हत्यारा !—और उसे अँग्रेजी सेना की छावनी में घुमाया जावे; बाक़ी सब गोरे सिपाही बिना किसी फ़ौजी अदालत के बिठलाये कर लेंगे, क्योंकि वे ऐसे लोगों को दण्ड देना बहुत अच्छी तरह जानते हैं।'

लॉर्ड कैनिंग का वह आदेश जारी हो ही चुका था। गोरी फौजों ने इलाहाबाद से चलकर फतेहपूर पर जो रोमान्चकारी अत्याचार किये उनके सामने कानपूर का वह पाप नहीं के बराबर बैठता है।

उसकी प्रतिक्रिया कानपूर पर फिर हुई। सौदा कोठी में ठहराये हुये उन बाल-बच्चों को पागल सिपाहियों ने नष्ट किया।

नाना का इसमें भी कोई हाथ न था। फिर भी नाना साहब के सिर यह भी मढ़ा गया!

जनता और जन परम्परा जानती है कि इतिहास ने नाना साहब के साथ न्याय नहीं किया।

परन्तु उसी इतिहास के कुछ पन्नें कभी कभी खुसफुस कर उठते हैं—

'नाना साहब और कानपूर की वह दुर्घटना !' दोनों अलग हैं।

इतना सब कहाँ से आया ?

दिल्ली का अन्तिम मुगल सम्राट्, भले ही वह नाम मात्र का सम्राट् था, बहादुरशाह के नाम से प्रसिद्ध है; परन्तु सन् १८५८ की जनवरी में जब उसके ऊपर राजद्रोह और अँग्रेज़ नर-नारियों के क़त्ल का मुक़द्दमा अँग्रेज़ सरकार ने चलाया तब उसका नाम अदालत की मिसिल में मुहम्मद सिराजुद्दीन मात्र लिखा गया था।

मेजर हैरियट सरकारी वकील था। उस समय इसे डिप्टी जज एडवोकेट जनरल कहते थे। मेजर हैरियट केवल सरकारी वकील ही नहीं था बहादुरशाह, अर्थात् मुहम्मद सिराजुद्दीन, के विरुद्ध गवाही-साखी जुटाने बटोरने का काम भी उसी को सौंपा गया था। जिस दिन यह काम सम्भाला उसने प्रण किया—'क़ैदी के विरुद्ध पक्का से पक्का प्रमाण पेश करने में रत्ती-भर कसर नहीं लगाऊँगा।' उसने अपने प्रग का अक्षर-अक्षर पालन किया।[१] मुक़द्दमा जनवरी में आरम्भ हुआ, परन्तु प्रमाण का जुटाना हैरियट ने अक्टूबर सन् १८५७ से ही शुरू कर दिया था। इससे पहले मई के महीने में जब मेरठ की छावनी में विद्रोह की आग भभकी तब यह वहीं अफ़सर था। किसी तरह प्राण बचाकर निकल भागा था। शायद ही अपने साथ कुछ रुपये पैसे या सामान ला पाया हो।

सितम्बर सन् १८५७ के मध्य से अन्त तक अंग्रेजी सेना ने जो भीषण अत्याचार दिल्ली में किये थे उनसे दिल्ली का रोम-रोम कण-कण काँप गया था। क़त्ल और लूटमार से बचने के लिये बहुत से लोग भाग गये थे। जो रह गये और जो थोड़े-से फिर दिल्ली लौट आये थे

---

1. Our Indian Empire P. 500

इन्हीं में से हैरियट को गवाह ढूँढ़ने थे। सफाई के गवाहों का नाम अभियुक्त मुहम्मद सिराजुद्दीन को बतलाना था।

हैरियट ने नामी सेठों और नवाबजादों का पकड़ना आरम्भ किया। एक सेठ हाथ पड़े। हैरियट ने पूछा—'तुम बलवे के समय दिल्ली में जरूर थे। हमको पता लग गया है। थे न तुम दिल्ली में।'

सेठ पसीने में तर तो हैरियट के सामने आया ही था, अचेत होने को हुआ क्योंकि कोड़ों और जूतों से पिटवाने से लेकर गोली मार देने तक का अधिकार उस समय के शासन को था।

हैरियट ने तुरन्त पुचकार के स्वर में कहा—'घबराओ मत सेठ। हम तुमको बचा सकते हैं। सुनो।'

सेठ का चेत लौट पड़ा। आशा जागीं। सेठ ने हाथ जोड़कर टूटे शब्दों में विनय की—'हुजूर सरकार......।'

हैरियट ने मुस्करा कर सावधान किया—'साहब बहादुर कहो सेठ, हर अँग्रेज को साहब बहादुर कहना चाहिये।'

सेठ ने कई बार 'साहब बहादुर' सम्बोधन दुहराया। 'मैं निर्दोष हूं हुजूर साहब बहादुर...हुजूर साहब बहादुर.........'

'इधर सुनो'—हैरियट ने सेठ को अपने निकट बुलाया। उन दोनों में अकेले में कुछ बात हुई। सेठ को गवाही से निष्कृति मिल गई। सेठ को हैरियट के पास रात में अकेले जरूर घड़ी भर के लिये आना पड़ा।

फिर एक नवाबजादा हैरियट के सामने पेश किये गये। पालकी में बैठकर घर से चले थे, परन्तु हैरियट के बंगले से एक फर्लाङ्ग की दूरी पर उतर पड़े। पैदल आकर उन्होंने हैरियट की कोर्निश की और बहुत शिष्टाचार के लहजे में बोले—'हुजूर ग़रीबपरवर सरकार! साहब बहादुर ने गुलाम को क्यों याद फ़रमाया?'

'तुम लाल क़िले के भीतर उस घड़ी मौजूद थे जब अँग्रेज़ मर्द और बच्चों का क़तल मुहम्मद सिराजुद्दीन मुलिज़म ने करवाया और तुम खुश हुये। तुम थे वहां पर, हमको मालूम हो गया है। बोलो।'

नवाबज़ादा का होश कपूर होने को हुआ। आंखें रीती पड़ गईं। 'हुज़ूर साहब बहादुर ! मैं उस वक्त नहीं था।'—नवाबज़ादा के मुँह से कठिनाई से निकला।

हैरियट की आंखें ऐसी पैनी हुईं जैसे भूखे गिद्ध की हों। ओठों पर बरबस मुस्कान लाते हुये हैरियट झूठ बोला—'मुलज़िम खुद तुम्हारा नाम लेता है।'

नवाबज़ादा के काटो तो खून नहीं। पीला पड़ गया।

हैरियट ने आश्वासन दिया—'सुनो। मरे मत जाओ। बच सकते हो।'

नवाबज़ादे की कुछ जान में जान आई। हैरियट से अकेले में बातचीत हुई।

रात के समय नवाबज़ादा भी अकेले में हैरियट से मिले। घड़ी आध घड़ी के उपरान्त लौट आये। गवाही देने से छुटकारा मिल गया।

इसी तरह कई सेठ साहूकार और नवाबज़ादे मेजर हैरियट के सामने लाये गये। अकेले में बात हुई और अकेले में ही उससे रात में मिलकर छुटकारा पा गये। कुछ मुक़द्दमे की समाप्ति तक के लिये दिल्ली से बाहर चले गये।

मार्च में मुक़द्दमे की समाप्ति हुई। हैरियट ने तीन घण्टे बहस की। बहुत बेतुका बका;[१] उसने यहां तक कह डाला कि 'चर्बी के कातूसों से हिन्दू-मुसलमान किसी को भी परहेज़ न था।' उसकी इसी प्रकार की धारणा मेरठ के विद्रोह का एक कारण बनी थी।

बहादुरशाह को आजीवन कालेपानी का दण्ड दिलवाकर हैरियट निश्चिन्त हो गया। अब उसके लिये हिन्दुस्थान में कोई काम न था। एक साल पीछे इङ्गलैण्ड के लिये चल पड़ा। जहाज़ में बैठने के पहले सामान की गिनती, तौल और क़ीमत आंकने की प्रथा थी। जहाज़ के

1. Our Indian Empire P. 501

प्रधान अफ़सर को हज़ार दो हज़ार का माल लिखवाया गया। मेरठ से बिचारा निहत्था बच निकला था। उसके पास अधिक होता भी कैसे ?

हैरियट मार्ग में ही बीमार पड़ गया और उधर जहाज़ ने साउथैम्पटन पर लंगर डाला इधर हैरियट की मृत्यु हो गई। जहाज़ से उतरने के समय सामान की गिनती, तौल और क़ीमत फिर आंकी गई। सामान में तीस हज़ार पौंड निकले ! ये उस समय तीन लाख रुपये के बराबर तो होते ही थे !! और अपने भतीजे के लिये उसने एक लाख पौंड की सम्पत्ति छोड़ी—वह अलग !!! हीरे जवाहिर इत्यादि।

जहाज़ के कप्तान ने मन में कहा—

'Nationalist abroad and a taxdodger at home !'

(बाहर राष्ट्रभक्त, घर में टैक्स-चोर !) लेकिन इसके पास इतना सब आया कहाँ से ?

अलीवर्दी खां की वसीयत

अलीवर्दी खां बंगाल का सूबेदार था। हुगली पर अँग्रेजों का कारखाना जम चुका था। माल बिकता था। पैसे आते थे। मौज थी। परन्तु विस्तृत भूमि पर अधिकार किये बिना रोज़गार अबाध गति से चले यह दुष्कर था। भूमि कैसे प्राप्त हो? कारखाने और काम करने वालों के निवास योग्य भूमि दिल्ली के मुग़ल सम्राट् और बंगाल के सूबेदार से मिल गई थी, परन्तु रोज़गार के फैलाव के लिये तो विस्तृत भूमि चाहिये, वह कैसे मिले?

बंगाल के सूबेदार ने विस्तृत भूमि नहीं दी। बंगाल में इधर-उधर छोटे-मोटे राजा थे। ये कभी-कभी आपस में लड़ भी जाते थे। और, भारत के अन्य भागों में तो परस्पर युद्ध होते ही रहते थे। हुगली कारख़ाने के अँग्रेज़ और इनके मालिक, कम्पनी वाले इङ्गलैंड निवासी, भारत के इस तत्कालीन रोग से परिचित थे। परन्तु उस समय तक उनमें इतनी शक्ति नहीं थी कि एक राजा या नवाब का साथ देकर दूसरे से भिड़ जायें और सौदे-पत्ते में कोई अच्छा सा भूमिखण्ड खसोट लें। और फिर विरोधी यदि हुगली या किसी अन्य स्थान पर बने इनके कारख़ाने पर टूट पड़े तो क्या करें? क़िला चाहिये, क़िला। क़िला बन सके तो विरोधी का सामना डट कर किया जाय, बढ़िया तोपें, गोलाबारूद इत्यादि सामान हाथ में था ही। भारत के राजा नवाब यह सब सामान इन लोगों से ख़रीदते थे। फिर ये उस क़िले की सहायता से उन्हें ख़रीद लें।

हुगली के अँग्रेज़ों ने बंगाल के कुछ राजाओं से साँठ-गाँठ करने का प्रयत्न किया, परन्तु सफल न हुये। अन्त में कारख़ाने का प्रधान अलीवर्दी खां के हुज़ूर में पहुँचा। सलाम की अपनी नाक रगड़ी—और

प्रार्थना की, 'बन्दपरवर हमें अपने कारखाने के चारों तरफ एक क़िला बनाने की ज़रूरत है। इजाज़त बख्शी जावे।'

'क्यों ? ऐसी क्या ज़रूरत पड़ गई है ?'

'चोर डाकुओं से बचने के लिये क़िले की ज़रूरत आ पड़ी है।

'पहरेदार बढ़ा दो। हमारी फौज तुम्हारी मदद करेगी।'

अँग्रेज़ सौदागर को हताश होकर लौट आना पड़ा। क़िला बनाने की अनुमति नहीं मिली।

मरने से पहले अलीवर्दी ने अपने पुत्र से कहा,—'अँग्रेजों को क़िला बनाने की इजाज़त कभी मत देना, और न फौज फांटा रखने की। अगर तुमने कभी इजाज़त दी तो समझ लो कि देश तुम्हारे हाथ न रहेगा।'

कहानी इतिहास के तथ्य पर आधारित है। देखिये H. C. Hill's Bengal in 1956-57 Vol. II P. 16 and Vol. 1 Page 64 and also Major B. D. Basu's Rise of the Christian Power in the East.

वैल्लूर का विद्रोह (सन् १८०६)

वैल्लूर (Vellore) मदरास से दूर है, दक्षिण में। अँग्रेजों के पैर भारत में जम गये थे। रोजगार बढ़ौती पर था। अँग्रेजी सिपाही और अन्य 'गोरे' नौकर भारत से जब घर लौटते तब मालामाल होकर। भारत उनके लिये कल्प वृक्ष हो गया था—सोने की चिड़िया उसे बहुत से अँग्रेज़ कहते ही थे। इङ्गलैंड के साधारण जन तक का जीवन स्तर-रहन सहन संभला और ऊँचा होता चला गया। जब पहले पहल यहां आये बड़े नम्र, बड़े साष्टांग प्रणामी! अब वह बात नहीं रही थी। क्यों रहती? भारत की आपसी फूट और आपापन्थी ने उन्हें सिर पर बिठला दिया था। हिन्दुस्थानियों का सिर उठा कर चलना तक उन्हें अखरने लगा होगा।

वैल्लूर की अँग्रेजी सेना में मद्रासियों की भी कई पल्टनें थीं। इन पल्टनों में हिन्दू और मुसलमान—दोनों थे। इन्हें तत्कालीन राजनीति से कोई मतलब न था। स्वधर्म के जरूर पक्के विश्वासी थे।

इन देशी पल्टनों के हिन्दू सिपाही तरह तरह के तिलक छाप अपने अपने माथे पर लगाते थे। और मुसलमान सिपाही लम्बी-लम्बी दाढ़ियां रखते थे। दोनों अपने अपने इन चिन्हों को धर्म समझते थे।

अँग्रेजों के प्रधान सेनानायक और उसके फौजी सहयोगियों को वे तिलक छाप और ये लम्बी दाढ़ियां खलने लगीं। उन सबने एक दिन सलाह की—

'हिन्दुस्थान में देशभक्ति नाम की तो कोई चीज नहीं है, धर्म सम्बन्धी अन्ध विश्वास ज़रूर भरे पड़े हैं, प्रधान सेनापति ने बातों-बातों में कहा।

देशभक्ति का सम्बन्ध राजा राजनीति, भूमि, अर्थ व्यवस्था से अधिक रहता है धर्म से कम—

एक सहयोगी बोला।

'इङ्गलैंड में जब रोमन कैथोलिक और प्रोटैस्टैंट सम्प्रदायों में तनातनी और झगड़े हुये तब देशभक्ति का सम्बन्ध धर्म से बहुत था, क्योंकि रोम का पोप कैथोलिक मत द्वारा इङ्गलैंड पर सम्राट् जैसा रोबदार, शान और हकूमत पसारे था वह सब देश को असह्य हो उठा था।'

'लेकिन हिन्दुस्थान की बात और है। तिलक छाप और लम्बी दाढ़ी की इङ्गलैंड के रोमन कैथोलिक और प्रोटैस्टेन्ट विवाद से कोई समानता नहीं। हमारी देशी पल्टनों में यह तमाशा वाहियात मालूम पड़ता है। बन्द कर देना चाहिये।'

अन्त में तै हुआ कि हिन्दू सिपाही कवायद परेड के मैदान में या जब ड्यूटी पर हों तिलक छाप लगा कर न आवें और मुसलमान दाढ़ी के नाम पर मैदान साफ़ रक्खें।

जैसे ही यह आदेश पल्टनों में पहुँचा खलबली मच गई। सिपाहियों में बातें होने लगीं—

'जब हमने अँग्रेजों के लिये लड़ाइयां लड़ीं और इनकी फतहों पर अपने खून के टीके लगाये तब भी हम तिलक छाप लगाते थे—'

'इतनी ही लम्बी दाढ़ियां रखते थे।'

'तिलक छाप हमारे धर्म का चिन्ह है।'

'और दाढ़ी हमारे दीन मजहब की करीने वाली निशानी।'

'जब ये अँग्रेज़ यहां के राजों और नवाबों से लड़े तब हम सब से कहते थे—'

'टीके तिलक छपाछप लगाओ, दाढ़ियां और भी लम्बी रक्खो। अब इन्हें कितना घमण्ड हो गया है। हमारे धर्म और मज़हब पर चोट करने पर उतर आये हैं।'

'यह सब नहीं सहा जायगा।'

'बरदाश्त के बिलकुल बाहर हो गया है।' अन्त में हिन्दू मुसलमान सिपाहियों ने उस आदेश को धर्म-विरुद्ध समझकर विद्रोह कर दिया। अँग्रेजों ने कठोरता के साथ उस विद्रोह को दबा दिया था। छोटा ही एक छोटी सी परिधि में केन्द्रित। परन्तु था तो विद्रोह। अँग्रेजों ने उससे कोई सबक नहीं लिया। ये तिलक टीके और वे लम्बी दाढ़ियां! सब ऊल-जलूल महज हिमाकत!! अँग्रेजों ने यही सोचा था। वे नहीं जानते थे कि हिन्दुस्थानी अपनी जमीन और जान से भी बढ़कर अपने धर्म को महत्व देते हैं–देशभक्ति की उनकी परिभाषा के दायरे को लांघने वाली बात! तिलक छाप और लम्बी दाढ़ी तो किसी गहरी भावना के बाहरी प्रतीक मात्र हैं, यह बात अँग्रेजों की समझ में सन् १८५७ के उपरान्त आई थी।

दयावान था........?

उत्तर प्रदेश के एक विश्वविद्यालय के बी० ए० क्लास में प्रोफेसर साहब बड़े उत्साह के साथ इतिहास पढ़ा रहे थे। उस दिन इतिहास का प्रसंग भारत में लॉर्ड विलियम बैंटिंक का शासनकाल था। क्लास में सत्तर-पचहत्तर विद्यार्थी तो होंगे ही। विद्यार्थियों के हाथ में पेन्सिल या कलम थी और सामने मेज पर नोट-बुक। किसी-किसी के सामने पुस्तक भी थी। जो जरा पीछे बैठे थे, उनमें से कोई फिल्मी-पत्रिका लिये था, कोई कहानी मासिक। प्रोफेसर साहब कुछ जोर के साथ बोल रहे थे। पीछे बैठे हुये कई विद्यार्थी खुसफुस करते जाते थे। विषय उस खुसफुस का जो कुछ भी हो, कम से कम इतिहास तो नहीं था।

लॉर्ड विलियम बैंटिंक के शासन की खूबियां समझाने के पहले प्रोफेसर साहब बैंटिंक के पूर्ववर्ती गवर्नर-जनरल अलहर्स्ट के पराक्रमों पर प्रकाश डालते हुये कहा—'बर्मा के राजा को लड़ाई में हराकर उसने असाम, अराकान और तनासरिम को कम्पनी के राज्य में मिला लिया और इन क्षेत्रों की जनता पर समृद्धि बरसा दी, कानून की सर्वव्यापी व्यवस्था क़ायम कर दी।'

दो विद्यार्थी आपस में खुसफुस कर रहे थे—'ऐशगाह'–सिनेमा में आज 'पकड़-धकड़'–फिल्म का उद्घाटन खुद मिस हिमाचली करने आ रही हैं। जरा जल्दी पहुँचना है।'

'हां–हां, मैंने भी विज्ञापन पढ़ा है। मिस हिमाचली के साथ मास्टर नगाधिराज भी पहुँचेगा। 'पकड़धकड़' में उसके साथ नगाधिराज ने गजब का पार्ट किया है।'

प्रोफेसर साहब विलियम बैंटिंक पर आ चुके थे। कह रहे थे—'बैंटिंक शांति का पक्षपाती था। वह हमारे पिछले अन्धविश्वासी

और सड़े-गले समाज को सुधारना चाहता था। जयपुर, भोपाल और ग्वालियर रियासतों में गड़बड़ मची हुई थी। परन्तु बैंटिक शांति और सुधार का फ़रिश्ता था। उसने—'

'राजनीति में फरिश्ता!'—अगली पांत में बैठे हुये एक विद्यार्थी ने धीरे से अपने साथी से कहा। प्रोफेसर के कान में व्यङ्ग पड़ गया।

'हाँ, राजनीति में भी फरिश्ते हो सकते हैं और होते हैं। इतिहास के विद्यार्थियों को तटस्थता के साथ सब बातों पर विचार करना चाहिये। उसने हिन्दुस्थानियों को डिप्टी-कलक्टर और मजिस्ट्रेट तक बनने की सुविधायें दीं, जो उनके लिये पहले दुर्लभ थीं।'

एक विद्यार्थी ने टोका—'१८५८ में रानी विक्टोरिया ने घोषणा की थी कि ऊँचे से ऊँचे पद तक के लिये हिन्दुस्थानी और अँग्रेज़ में फर्क नहीं किया जायगा, परन्तु वह घोषगा अमल में कितनी लाई गई?'

'कहाँ दौड़ गया तुम्हारा दिमाग़? मैं बैंटिक की बात कह रहा हूं।'—प्रोफेसर साहब की बात सुनकर विद्यार्थी कुसमुसा गया। वह कहते रहे—'सती प्रथा अकबर ने नहीं बन्द करा पाई। बैंटिक ने समाप्त की। अँग्रेज़ों की पढ़ाई का बड़ा सिलसिला बैंटिक ही ने डाला।' पीछे बैठे हुये विद्यार्थियों में एक बहुत ध्यानमग्न दिखलाई पड़ रहा था। वह एक पुस्तक दोनों कुहनियों के सहारे साधे उसमें रखी हुई एक पत्रिका में छपी कहानी पढ़ रहा था। कहानी यह थी—

पानी बरस चुका था। हवा चल रही थी। कलकत्ते की उस सड़क के वृक्षों की नन्हीं नन्हीं डालियां हवा के झोकों के साथ कबड्डी सी खेल रही थीं। कलकत्ते की एक विशाल सरकारी इमारत के एक सुसज्जित कमरे में गवर्नर-जनरल लॉर्ड विलियम बैंटिक दो अँग्रेज अफ़सरों के साथ बैठा हुआ था। एक बैंटिक का सेक्रेटरी था, दूसरा मेजर सदरलैंड, जिसे ग्वालियर-राज्य का रेजीडेण्ट नियुक्त किया गया था। अपने पद का भार सम्भालने के पहले वह गवर्नर-जनरल बैंटिक की 'निजी' नीति जानने के लिये पेशी में गया था।

'मेजर सदरलैंड, आपको ग्वालियर में सावधानी और दृढ़ता के साथ काम करना पड़ेगा।' बैंटिंक ने आँखें गड़ाते हुये कहा।

'जरूर महामान्य जी! सती की प्रथा आपने बन्द कर दी है। क़ानून का पालन कठोरता के साथ किया जायगा।'—सदरलैंड ने अपने बैंटिंक की नीति के पूरे समर्थक होने की बानगी पेश की।

बेंटिंक परिहास-प्रिय था और उसका सेक्रेटरी निकट बैठा था, जो कम्पनी-सरकार की सारी नीतियों से परिचित था।

बैंटिंक हँसते हुये बोला, 'सती प्रथा के बन्द करने का कुछ पुण्य भले ही मुझे दे दो। बहुत बुरी और बेहूदी थी। बन्द असल में कराया उसे राजा राममोहनराय ने। ख़ैर, मैं उसकी बाबत बात नहीं कर रहा हूं।'

मेजर सदरलैंड ने दूसरी बानगी पेश की—'ग्वालियर रियासत में जगह-जगह अँग्रेज़ी स्कूल खुलवाने की प्रेरणा ग्वालियर-राज्य को दूँगा, जिससे वहां के सरदारों और प्रजा के अंधविश्वास दूर हों और नई रोशनी की चमक-दमक फैले। अँग्रेज़ी राज्य के प्रति लोगों में भक्ति जाग उठेगी।'

'मैकॉले का सपना है कि पचास बरस के भीतर ही सारा हिन्दुस्तान हमारे ख़यालों का हो जायगा।' बैंटिक ने मुस्कराते हुये व्यङ्ग किया-—'मैकॉले भूल जाता है कि जब तक हिन्दुस्थान में राजे, नवाब और सरदार हैं, तब तक उनका प्रभाव जनता पर अधिक रहेगा, हमारा बहुत कम।' बैंटिंक ने कहा।

सेक्रेटरी ने समर्थन किया।

बैंटिंक बोला—'भले ही ऊपर-ऊपर हमारी नीति इन राज-रजवाड़ों में हस्तक्षेप करने की न हो, परन्तु हमें इनको, अन्त में ख़तम करना होगा, भले ही धीरे-धीरे कर पावें।'

बैंटिंक कुछ क्षण चुप रहा। वे दोनों तो चुप थे ही। नीति के किसी बड़े पहलू पर प्रकाश पाने की प्रतीक्षा में थे। बैंटिंक के होठों पर तिरछी-सी मुस्कान खेल गई।

'मेजर, आपके पहले ग्वालियर का रेजीडेन्ट कैवैंडिश था न ?' बैंटिंक ने बात प्रश्न से शुरू की। बहुत ही साधारण बात थी। सदरलैंड ने हामी भरी। सेक्रेटरी उत्सुकता के साथ बैंटिंक की ओर देखने लगा।

'हमारे आगरा और बम्बई प्रान्तों के बीच, कौन से राज्य बाधा बने हुये हैं ?'—दूसरा प्रश्न। सदरलैंड उत्तर की टटोल में लग गया। सेक्रेटरी ने बतलाया—'ग्वालियर और इन्दौर।'

बैंटिंक ने सदरलैंड की ओर देखा। सदरलैंड समझ गया कि मुझे क्या कहना चाहिये।

बोला—'जी हाँ, यही दोनों हैं।'

बैंटिंक ने राजनीति के इस पहलू पर अपना प्रकाश डाला—'बेशक यही दोनों हैं। राजपूताना हमारे हाथ में है। इन्दौर की अपेक्षा ग्वालियर पर हमें पहले ध्यान देना है।'

'जो'—सदरलैंड आज्ञाकारी की मनोवृत्ति में था।

'कैवैंडिश को ग्वालियर के रेजीडेण्ट पद से क्यों हटना पड़ा ?' बैंटिंक का तीसरा प्रश्न। वे दोनों शायद जानते थे कारण, परन्तु बोले नहीं।

बैंटिंक कुर्सी के पीछे सिर लटका कर हँस पड़ा। फिर यकायक तनकर बैठ गया और बोला—'कैवैंडिश मूर्ख था—सज्जन मूर्ख।'

वे दोनों कहते ही क्या ? नीचा सिर किये रहे। बैंटिंक ने कुर्सी के पीछे फिर गर्दन टेकी और हँस पड़ा। कुछ क्षण सन्नाटा छाया रहा।

सदरलैंड ने विनय पूर्वक पूछा—'ग्वालियर के लिये नीति दस्तन्दाजी की रहेगी या तटस्थता की ?' बैंटिंक ने वैसे ही गर्दन टिकाये अपना मुँह खोला, अँगूठे और तर्जनी उँगली की चुटकी बनाई, जैसे शक्कर की गोली पकड़े हो, और खुले मुँह के भीतर रख ली। सेक्रेटरी ने मुँह फेर लिया और सदरलैंड के चेहरे पर आश्चर्य की रेखायें

खिच गईं। बैंटिंक फिर तन गया और मुँह में से चुटकी खींचकर आश्चर्य चकित मेजर से बोला—'यदि ग्वालियर का राज्य तुम्हारे मुँह में पड़कर दाढ़ों के नीचे आ जाय, तो उसे निगल जाना। कैवेंडिश की तरह उगल मत देना। सिंधिया को पेन्शिन दे दी जायगी; बस यहीं है मेरी नीति। समझे बच्चू ?'

कहानी यहीं समाप्त हो गई। वह विद्यार्थी यकायक हँस पड़ा। प्रोफेसर साहब ने देख लिया। वह उस समय कह रहे थे—'बैंटिंक क्रान्तिकारी सुधारवादी था, दयावान् था।' विद्यार्थी को उस तरह हँसते पाकर कुड़क गये—'क्या बात है ? यह क्या हिमाकत है ?'

विद्यार्थी के कानों में प्रोफेसर साहब के भाषण का खण्ड–'बैंटिंक दयावान था'—पड़ गया था। आधे क्षण के लिये सकपका कर सम्भल गया।

बोला,—'बैंटिंक दयावान तो नहीं था, मसखरा ज़रूर था।'

'क्या बेसिर-पैर की बात करते हो ? इतिहास और मसखरेपन का बेतुका जोड़ लगाकर परीक्षा पास करोगे ?'

विद्यार्थी ने कहानी में जो कुछ पढ़ा था, प्रोफेसर साहब को उसका सार सुना दिया। कहानी ऐतिहासिक थी। कहानी के नीचे उसका आधार उद्धृत था। विद्यार्थी ने आधार भी बतला दिया।

प्रोफेसर साहब ने कहा—'यह तो कोई अपरिचित साधारण-सा इतिहास–लेखक मालूम होता है। बैंटिक के बाद जो इतिहास-शोधक हुये हैं, उन्होने किसी ने भी, इस मजाक का जिक्र नहीं किया है। इतिहास के मेरे गुरु प्रसिद्ध इतिहास लेखक, डॉक्टर जॉनबुल ने सदा बैंटिक की प्रशंसा की।'

'हो सकता है।'–विद्यार्थी के स्वर में विश्वास की खनक नहीं थी। प्रोफेसर को विद्यार्थी का रुख खटक गया।

उन्होंने विद्यार्थी को सावधान किया–'तुम कहा करते हो कि बी० ए० पास करने के उपरान्त मैं एम० ए० इतिहास में करूँगा

और फिर भारतीय इतिहास के किसी अंग पर निबन्ध लिखकर डॉक्टरेट लूँगा। इस प्रकार की बेढङ्गी बातें यदि तुमने दिमाग़ में भर लीं, तो बी० ए० पास करना असम्भव हो जायगा।'

'मैं ध्यान देकर परिश्रम के साथ अध्ययन करूँगा, प्रोफेसर साहब।' विद्यार्थी ने आश्वासन देने का प्रयास किया।

प्रोफेसर साहब को अपनी बात पूरी करनी थी–'बुद्धिमान् वह, जो सबसे अखीर में अपनी बात कहे। सबसे बाद के अँग्रेज इतिहास लेखकों और उनके भारतीय शिष्यों ने इतिहास के निष्कर्ष तौल-तौल कर अपनी पुस्तकों में रखे हैं। इन निष्कर्षों को गांठ में बाँधो, दिमाग़ को इधर उधर न भटकाओ। किस्सा-कहानी इतिहास नहीं है।'

ज़ोर के साथ विद्यार्थी ने हामी का सिर हिलाया, क्योंकि प्रोफेसर साहब इतिहास के परीक्षक भी रहा करते थे, परन्तु विद्यार्थी ने मन ही मन कहा–'इनके अँग्रेज़ गुरू यहां से चले गये और शायद स्वर्गवासी भी हो गये हों। अब उनका भूत इनके दिमाग़ को गुलामी में जकड़े हुये है। कब तक किस 'अन्त' तक, इतिहास के सही निष्कर्षों की उपेक्षा की जायगी ?'

यह कहानी ऐतिहासिक है। इसका आधार है—John Hope's 'The House of Sindhia'—a sketch, 1863, Longman's Vol, IV P. 463. जिस मसखरे ढङ्ग से उसने ग्वालियर को निगल जाने की बात कही थी, वह इसी पुस्तक में है।

अभी मैं तो जीवित हूं

ग्वालियर के युद्ध में महारानी लक्ष्मीबाई का स्वर्गवास हो चुका था। उनके महाप्रस्थान की सूचना झांसी में शीघ्र आ गई। वैसे भी आती और फैलती, अँग्रेज़ों ने प्रयत्न और योजना के साथ फैलाई जिसमें झांसी ज़िले की जनता का जलता मन बुझ जाय।

लक्ष्मीबाई के अन्त का समाचार सुनकर क्या झांसी वाले रोये? रोये होंगे, नाहीं कैसे की जा सकती है? परन्तु उनके आंसू किसने देखे? लक्ष्मीबाई के देहावसान के बाद झाँसी ज़िले की जनता ने जो कुछ किया और लगातार छह महीने तक करती रही वह आंसुओं की बूंदों की कहानी नहीं थी। यह बात झांसी ज़िला जानता था और अँग्रेज़ भी।

अँग्रेजों के सेना नायक जनरल रोज़ के मातहत मेजर पिंकने ने एक पत्र में लिखा,–'इस प्रदेश का बड़ा भाग जो बेतवा और धसान नदियों के बीच में है हमारे ख़िलाफ़ खुल्लमखुल्ला विद्रोह कर रहा है।' दूसरे पत्र में लिखा,–'इन विद्रोहियों को हमने पूरी माफ़ी का भरोसा दिया तो भी इन्होंने हथियार नहीं डाले! मऊरानीपूर खास तौर से हमें बहुत परेशान कर रहा है।'

उधर बेतवा और धसान के बीच के इलाक़े का वह हाल था इधर करेरा, पिछोर और चन्देरी के क़िलों में लक्ष्मीबाई के सेनानायक दीवान जवाहरसिंह, मनसाराम और अनेक अहीर अँग्रेज़ों को जीतोड़ लड़ाई दे रहे थे।

अँग्रेज़ों का एक बड़ा दस्ता करेरा पिछोर वालों का दमन करने के लिये गया, दूसरा दस्ता मेजर पिंकने और उसके साथी कर्नल लिडैल के साथ मऊरानीपूर की दिशा में गया। यह दस्ता मऊरानीपूर

पर सीधा नहीं गया। इसने टुकड़ियों में बँटकर मऊरानीपूर के घेरने की योजना बनाई। एक काफ़ी बड़ी टुकड़ी चक्कर काटकर मऊरानीपूर के दक्षिण से आक्रमण करने के लिये चली।

मऊरानीपूर में उस समय दो नायक अँग्रेजों से युद्ध ठान रहे थे। एक का नाम काशीनाथ भैया था और दूसरे का दीवान आनन्दराव। आनन्दराव का असली नाम आनन्दराय था। लक्ष्मीबाई ने अपने राज्यकाल में इनके कर्तव्य पालन से प्रसन्न होकर इन्हें दीवान आनन्दराव कर दिया था।

काशीनाथ भैया अँग्रेजी सेना की उत्तर वाली टुकड़ी का सामना करने के लिये चले गये। फिर लौट कर न आ सके। दक्षिण वाली अँग्रेज़ी टुकड़ी का मुकाबला किया जाय या नहीं? किया जाय तो कैसे? उस छोटे से नगर के सामने (अब यह बड़ा है) यह भयङ्कर समस्या मुँह बाये आ खड़ी हुई।

मेजर पिंकने की टुकड़ी ने मऊरानीपूर वालों के पास सन्देसा भेजा,–'यदि तुम लोग हथियार डाल दो तो क्षमा कर दिये जाओगे, किसी का कुछ नहीं बिगड़ेगा।'

मऊरानीपूर की गढ़ी में, जिसके टूटने पर आज कल तहसील का कार्यालय है, नगर के मुखिया इकट्ठे हुये। दीवान आनन्दराव की गांठ में केवल दो सौ ढाई सौ आदमियों की एक छोटी-सी टुकड़ी थी। अच्छे निशानेबाज़ थे, परन्तु बन्दूकें पुराने ढर्रे की बोंडादार, तलवारें और भाले। बस। मुक़ाबले में अँग्रेज़ों की सीखी सिखाई पल्टनें, नई कारतूसी राइफ़िलें, नई तोपें और खाने-पीने का प्रचुर सामान। मऊरानीपूर के कई बूढ़ों का उत्साह क्षीण पड़ चुका था।

गढ़ी की उस बैठक में तरह-तरह की बातें होने लगीं।

एक ने कहा,–'बानपूर के राजा मर्दनसिंह ने आत्म-समर्पण कर दिया है, दक्षिण की ओर से अब अँग्रेज़ों को कोई खुटका नहीं रहा। टीकमगढ़ का दीवान नत्थे खां अँग्रेज़ों का पूरा साथ दे रहा है।'

दूसरे ने समाधान की कोशिश की,—'टीकमगढ़ ने हमारा साथ दिया ही कब था ? नत्थे खां ने हमारी झांसी पर धावा किया और मुंह की खाई—'

एक और ने उत्साह के साथ जोड़ा,—'नत्थे खां के नायब लाला राजधर ने हमारी मऊ के ऊपर चढ़ाई की तो हमने उसे धूल चटा दी। अपने यहां की स्त्रियों ने वह गीत बना डाला जिसे वह बराबर गाती रहती हैं—

रजधरिया आयो दुपहरिया में,
मऊ ने ऐसी मार लगाई, मऊ ने ऐसी धूर चटाई,
रजधरिया भूंजत फिरो रे महुआ खपरिया में।

कई हँस पड़े—विपद के उन बादलों की कड़कतड़क में भी ! कुछ ने अपना साफ़ा इधर-उधर किया और सिर खुजलाया।

दीवान आनन्दराव बोले,—'लड़ना पड़ेगा, लड़ना चाहिये।'

अन्त तो साफ़ दिखलाई पड़ रहा है, अँग्रेज़ों का हराना दुष्कर है।' एक ने आह भर के कहा।

'हारिये न हिम्मत बिसारिये न राम नाम, किस घड़ी के लिये कहा गया है ?' आनन्दराव ने प्रोत्साहित किया।

उत्साह की लहर उठी।

कुछ के मन गिर चुके थे उस लहर ने उन्हें थोड़ा-सा ही सशक्त कर पाया।

सचेत करने के लिये एक ने उनसे कहा,—'झांसी में अँग्रेज़ों ने महारानीसा'ब के कालपी चले जाने पर कैसा जनवध किया ! इनका भरोसा रत्ती भर भी न करो।'

'लड़ते-लड़ते मरना कहीं अच्छा', दूसरा बोला।

एक बूढ़े ने खांसते-खांसते प्रतिवाद किया,—'अँग्रेज़ भी लड़ते-लड़ते परेशान हो गये हैं। गरौठा की तरफ़ उन्हें आजकल दीवान देशपत तंग कर रहे हैं इसलिये अँग्रेज मऊ में क़तल नहीं करेंगे।'

इस दलील पर कुछ लोग झुके।

आनन्दराव ने सचेत किया,–'ग्वालियर में महारानी साहब हमारे तुम्हारे लिये, धर्म के लिये, झांसी बुन्देलखण्ड के नाम पर लड़ते-लड़ते स्वर्ग सिधारीं।'

कुछ लोगों की आँखों में आंसू आ गये जो उन्होंने जल्दी पोंछ डाले।

एक बोला,–'इन बातों में अब क्या रक्खा है. जिससे अपने गांव का हित हो उसकी चर्चा करो।'

'लड़ना चाहिये',–आनन्दराव ने अपना निश्चय दुहराया।

'अब क्या रक्खा है लड़ाई में? महारानी तो चली ही गईं—' एक वृद्ध ने भी अपना मत दृढ़ता के साथ फिर प्रस्तुत किया।

'मैं तो अभी जीवित हूं',–आनन्दराव ने भरे हुये स्वर में कहा, 'जिस धर्म के लिये महारानी साहब ने अपने प्राण दिये उसी के लिये, अपनी महारानी लक्ष्मीबाई के नाम के लिये, मऊ की नाक न कटे इसके लिये मैं और मेरे साथी लड़ेंगे। जो डरते हों वे अपने घर के किसी कोने में जा दुबकें।

और आनन्दराव एवं उनके दो सौ ढाई सौ साथी मेजर पिंकने की पल्टनों से मऊ के दक्षिण वाली पहाड़ियों में जा भिड़े। वे सब बेतरह लड़े। आनन्दराव गोली खाकर मरे और उनके अनेक साथी भी। परन्तु जब तक उनकी दम में दम रहा अँग्रेज मऊ में नहीं घुँस पाये।

जहां वे लोग मारे गये थे वहाँ अब हमारा सपरार–बाँध, मऊ से दक्षिण में दो मील की दूरी पर, लहरा रहा है मानो उन वीरों की स्मृति में अपनी छाती फुला रहा हो।*

लेखक के परिवार की एक परम्परा और मेजर पिंकने के पत्र ता० २३–६–१८५८ का, २७–६–१८५८ का, २६–७–१८५८ का एवं ५, १० और २० अगस्त सन् १८५८ के पत्रों के आधार पर।

दिल्ली के पतन का एक कारण यह भी हुआ

फिरंगियों (अँग्रेज़ों) को भारत से निकाल बाहर करने की भावना देशव्यापी हो गई थी। छोटे से ही कारण से चारों ओर आग भभक सकती थी। सन् १८५७ के अप्रैल के आरम्भ में कलकत्ता निकटवर्ती बारकपूर में मंगल पांडे को फांसी लगी कि बिछी बारूद पर चिनगारी पड़ गई।

नौ दस मई का मेरठ–काण्ड होने के बाद वहां की छावनी के हिन्दू-मुसलमान सिपाही एके की गांठ बाँध कर दिल्ली जा पहुँचे। जगह जगह राजा और नवाब शक्ति का खण्ड-खण्ड करके अलग विलग न हो जायें इसलिये बहादुरशाह को सम्राट् घोषित कर दिया गया–भारतीय एकता का चिन्ह बहादुरशाह को बना लिया।

मेरठ से आये सिपाहियों में कुछ ऐसे भी थे जैसे किसी क्रूर शिक्षक की दबोच से छुटकारा पाये हुये शैतान विद्यार्थी, जैसे रस्सी-पगहा तोड़ कर छलाँगें भरने वाले मरकहे ढोर। इन लोगों ने मौका पाते ही दिल्ली में जहां तहां लूटमार शुरू कर दी।

जैसे ही मेरठ के सिपाही दिल्ली में आये बहादुरशाह के सामने प्रश्न खड़ा हुआ–प्रधान सेनापति किसे बनाया जाय? सिपाहियों में बख्तखां नामक एक अफ़सर था। पांच फीट दस इन्च ऊँचा। सीना उसका चवालीस इन्च का, हां तोंद जरा निकली हुई, परन्तु बड़ा ही कुशाग्र बुद्धि और चतुर। उसकी बहादुरी उसकी मुँहज़ोरी का साथ देती थी। सिपाहियों में उसका मान सम्मान भी था। परन्तु प्रधान सेनापति बनाया गया मिर्ज़ा मुग़ल को। मिर्ज़ा मुग़ल शाहज़ादा था। परम्पराओं का पालन-पोषण पाया था शाहज़ादे ने। योग्यता, पात्रता से कुछ मतलब न था।

सिपाहियों के एक अंग ने लूट-पाट की तो बादशाह के पास शिकायत पहुँची। थोड़ी सी ही छानबीन के बाद पता चल गया—अपराधियों में प्रमुख था मिर्जा अबूबकर ! बादशाह का पोता !! अबूबकर ने मुग़ल वंश की ही एक महिला पर डाका डाला था। पीढ़ियों की अय्याशी और अत्याचार-परता में पले खून वाले अबूबकर को पूरी स्वच्छन्दता मिल गई थी।

बहादुरशाह बहुत दुखी हुआ। अस्सी के ऊपर आयु थी, परन्तु हृदय उसका कवि का था। फ़रमान उसने आजादी, न्याय और सबके साथ एक सा बर्ताव करने के निकाले थे। साधारण सिपाहियों को दण्ड दिया जाय और अबूबकर को छोड़ दिया जाय ! यह बख़्तखां को बिलकुल नहीं रुचा जँचा।

बादशाह के सामने पहुँचा। चालू शिष्टाचार के उपरान्त बातचीत चल पड़ी।

'जहांपनाह, इस लूटमार से हमारे सारे मन्सूबों पर पानी पड़ जायगा।'

बहादुरशाह मसनद से टिके सुगन्धित तमाखू का हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। बोले, 'आप इतने सब के रहते हमारा कुछ नहीं बिगड़ सकता।'

'लेकिन जहांपनाह हमारी चल कहाँ पाती है ? अगर हमारी चल सके तो हम एक छोटे से पंछी तक को बेजा तौर पर पंखे न फड़फड़ाने दें।'

काव्यात्मक ढंग से प्रकट किये गये इस दम्भ पर कवि हृदय बहादुरशाह मुस्करा पड़े।

'मैं दिल्ली में और अपने पूरे मुल्क में अमन चैन और धरम ईमान का राज देखना चाहता हूं जिसमें चोरी, बटमारी को रत्ती भर भी गुञ्जाइश नहीं। जो कोई भी करे उसे कड़ी सजा दी जाय चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो।' बहादुरशाह ने कहा।

'कितना भी बड़ा जहांपनाह ?'

'हाँ कितना भी बड़ा मेरे सरदार बख़्तखां ।'

'और अगर शाही ख़ान्दान का हो तो ?'

'पहले ही कह चुका हूं—कोई भी हो ।'

'मिर्जा अबूबकर भी, जहांपनाह ?'

बहादुरशाह चौंक पड़े । हुक्के की निगाली हाथ से छुटक गई । मसनद छोड़कर सीधे बैठ गये । अबूबकर के कुकर्म का समाचार उनके कान तक नहीं पहुँचा था ।

बख़्तखां सिर ऊँचा किये उनके उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था ।

'हाँ अबूबकर को भी वही सजा दी जायगी जो ऐसी हालत में मामूली आदमी को दी जाती ।' बादशाह ने उत्तर दिया, भरी सांस छोड़ कर मसनद से टिक गये और एक हाथ की मुट्ठी बाँधने खोलने लगे ।

'अगर जुर्म साबित पाया जाय तो क्या सज़ा दी जावे, जहांपनाह ?' एक दरबारी के संकेत द्वारा वर्जन करने पर भी बख़्तख़ां ने पूछ डाला । दरबार में सन्नाटा छा गया ।

बादशाह के हाथ में हुक्के की निगाली जा पहुँची थी । हुक्के का कश लेते रहे ।

कुछ क्षण उपरान्त बोले,—'अँग्रेजों के क़ानून में ऐसे जुर्म की क्या सज़ा है ?' बहादुरशाह ने सुन रक्खा था कि अँग्रेज़ी क़ानून अपेक्षाकृत कुछ हलका दण्ड देता है और बड़े कहलाने वाले लोगों को केवल भर्त्सना देकर छोड़ भी सकता है । देशी शासन विधि में राजपुत्रों और नवाबज़ादों के ऊपर या तो मुक़द्दमा चलाने का कोई साधारण श्रेणी वाला पीड़ित साहस ही नहीं कर सकता था, और, यदि शासक न्यायी होता और ऐसे किसी अपराध की फ़रियाद उसके सामने पहुँचती तो दण्ड भी अपराधी को बिकट प्रकार का भुगतना पड़ता था ।

'यहाँ तो जहांपनाह अँग्रेज़ी क़ानून इन दिनों नहीं बर्ता जा सकता। अभी अपनी ही रीत बर्तनी चाहिये उसी से अपना गुज़ारा हो सकेगा। बिना सख्ती के काम नहीं चल सकेगा।'

'कोतवाल को क्या हिदायत दी जाय ?'

'जो बर्ताव मामूली हैसियत के मुजरिम के साथ किया जाता रहा है वही बड़ी हैसियत वाले के साथ भी किया जाय।'

'यह हिदायत मेरे फ़रमान में मौजूद है।'

'उसके बावजूद भी अमल नहीं होता।'

'ज़रूर होना चाहिये।' बहादुरशाह ने मसनद से उठकर कहा। ताव पर थे।

बख्तखां एक बड़ी सेना लेकर बहादुरशाह की सेवा में आया था। जितना ख़ज़ाना साथ लाया था उसे भी बादशाह को भेंट कर दिया था! बहादुरशाह उसकी इज्ज़त करते थे और उससे डरते भी थे। बख्तखां मुँहजोर था ही।

तुरन्त बोला,—'जब तक बड़े ख़ानदानी होने का दम भरने वाले चोर डाकू को कड़ी सज़ा नहीं दी जायगी हमारे मामूली सिपाही भी रियायत के लिये चिल्लाते रहेंगे।'

'मैं तुम्हें दिल्ली की सारी की सारी फौज का आला जनरल बनाता हूं। बर्तो क़ानून।'

बख्तखां ने बादशाह के ज़बानी आदेश को कलमबन्द करा के अपने खीसे में रक्खा और कोर्निश की।

बादशाह ने सोचा होगा कि छुट्टी पाई।

अपनी बात में कभी कसर न लगाने वाले बख़्त ने कहा,— 'जहांपनाह मैं यहाँ अमन चैन की बरसा कर दूँगा।'

'मुझे तुम से पूरी उम्मेद है सरदार जनरल बख्तखां।' बादशाह ने कुछ थके हुये से स्वर में बख्तखां का दम्भ सहलाया।

बख्तखां को चैन नहीं पड़ रहा था। बोला,—'जहांपनाह, चोर डाकू को चाहे वह बड़ा आदमी हो, चाहे छोटा नाक कान काटे जाने की सज़ा दी जायगी।'

बादशाह ने मसनद के सहारे लेटे लेटे अपनी बात गिरे हुये स्वर में दुहराई,—'हाँ हाँ कह तो चुका हूं।'

बख्तखां ने इस आशय का भी बादशाह से फ़रमान लिखवाया। बहादुरशाह थक चुके थे। बख्तखां को भी अब कुछ और नहीं कहना था। दरबार से चला आया।

बख्तखां ने अबूबकर के पकड़े जाने का प्रयास किया। परन्तु वहाँ तो थे अबूबकर के जैसे कई! और फिर उनके बड़े बड़े नातेदार। ऊपर से महल की कई बेगमों के आंसुओं की धार और हाय तोबा। अपराधियों को दण्ड न दिया जा सका। सेना की सूरवीरी में ज़रा भी कसर नहीं थी, परन्तु अनुशासन की त्रुटि बढ़ती चली गई, और उतनी बड़ी वीरता के साथ लड़ते हुये भी दिल्ली की सेना का अँग्रेजों के मुकाबले में हार जाने का एक बड़ा कारण अनुशासन की कमी भी हुआ।